॥ ओ३म् ॥

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

Date of Printing = 05-02-21
प्रकाशन दिनांक = 05-02-21

फरवरी २०२१

वर्ष ५० : अङ्क ४
दयानन्दाब्द : १९६
विक्रम-संवत् : पौष-माघ २०७७
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,१२१

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व
सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओमप्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९९५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

कुल पृष्ठ २८
एक प्रति १५.०० रु०

वार्षिक शुल्क १५०) रुपये
पंचवर्षीय शुल्क ५००) रुपये
आजीवन शुल्क ११००) रुपये
विदेश में ५०००) रुपये

इस अंक में

- वेदोपदेश २
- विरोध तांडव का नहीं, अमेजॉन...... ४
- वीर बालक हकीकत राय के बलिदान.... ६
- वेदों में अलंकार ७
- आर्य नेता लाला लाजपत राय ११
- ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज और सत्यार्थ.... १६
- दलितोद्धार की आड़ में (६) १९
- गीता और आर्यसमाज २२
- श्री स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक..... २६
- बुद्धिजीवियों की दृष्टि में—शाकाहार..... २७

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

॥ ओ३म् ॥

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। —महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश—अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया । ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्म्माणि कृण्महे ॥

—ऋ० १९।६८।१॥

शब्दार्थ—**अव्यसः**=अव्यापक, परिच्छिन्न [जीवात्मा] **च**+**च**=और **व्यचसः**=व्यापक [परमात्मा] के **बिलम्**=भेद को, रहस्य को, ठिकाने को **मायया**=बुद्धि से **वि**+**स्यामि**=खोलता हूँ। **ताभ्याम्**=उन दोनों से अथवा उन दोनों के लिए **वेदम्**=वेद को **उद्धृत्य**=ग्रहण करके **अथ**= इसके अनन्तर **कर्माणि**=कर्मों को **कृण्महे**=हम करते हैं।

व्याख्या—जीवात्मा अथवा अपना-आपा तथा परमात्मा के सम्बन्ध में संसार में बड़ा विवाद है। कई लोग तो इन दोनों की सत्ता ही स्वीकार नहीं करते। जो स्वीकार करते हैं उनमें भी इनके सम्बन्ध में एकमत नहीं है। परमात्मा को कोई सातवें आसमान पर, कोई चौथे आसमान पर, कोई क्षीरसागर में और कोई अन्यत्र कहीं बतलाकर उसको परिच्छिन्न, अव्यापक, एकदेशी बतला रहा है। एकदेशी अवश्यमेव अल्पज्ञ और अल्प सामर्थ्य वाला होगा, उससे इस विशाल ब्रह्माण्ड की रचना, पालना, संहारणा नहीं हो सकती। इस दोष का निराकरण करने के विचार ही से मानो वेद में कहा गया है कि वह व्यापक है। जीव को अव्यापक बतलाया गया है। इन दोनों का भेद, इनका रहस्य ज्ञान से जाना जा सकता है इसलिए कहा—**'बिलं वि ष्यामि मायया'** बुद्धि से, ज्ञान से इनका भेद, रहस्य खोलता हूँ।

प्रत्यक्ष पदार्थों के विषय में भी बहुधा विवाद हुआ करते हैं, परोक्ष पदार्थों का तो कहना ही क्या है। किन्तु भगवान् ने कृपा करके जो ज्ञान दिया है, उससे काम लो, दोनों के भेद को, ठिकाने को ज्ञान से खोलो। ऋषि ने कहा भी है—

हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति । —श्वेता० ४।१७

हृदय से, बुद्धि से तथा मन से ही इसका बोध होता है। जो इस बात को जान लेते हैं, वे अमृत हो जाते हैं, मौत से निर्भय हो जाते हैं।

जिन्होंने उस अविनाशी, अमर को जान लिया उन्हें मृत्युभय कहाँ रहा ? किन्तु उसे जानने के लिए मन, बुद्धि तथा हृदय सभी का सहयोग होना चाहिए। मन और बुद्धि, मनन और अध्यवसाय उनका निश्चय कराएँगे। मस्तिष्क को तर्क चुप करा सकता है, किन्तु सूक्ष्म भावनाओं के धनी हृदय ने यदि उसे धारण न किया तो फिर नास्तिकता के गहरे गर्त्त में गिरना होगा। इसलिए हृदय को भी साथ मिलाओ। ऋषि श्वेताश्वतर ने बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा—

अंगुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः संकल्पाहंकार-समन्वितो यः ।

बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि दृष्टः ॥ —५।८

जो ज्ञानगम्य है, सूर्यसमान तेजस्वी है, सङ्कल्प करता है, अहङ्कारवान् है, वह अत्यन्त सूक्ष्म आत्मा अपर है, वह बुद्धि तथा अपने गुणों से दीखता है ।

सचमुच वह 'अपर' है, 'पर' तो परमात्मा है । बुद्धि के गुण आत्मा का ज्ञान करा रहे हैं । इच्छा-द्वेष, सुख-दुःख, ज्ञान और प्रयत्न, ये आत्मा के गुण आत्मा का अनुमान करा रहे हैं । इस अनुमान से आत्मा को जानकर जो साधनों का अनुष्ठान करता है, उसे आत्मा का साक्षात्कार, प्रत्यक्ष भी होता है, तभी कहा—**'अपरोऽपि दृष्टः'**=अपर आत्मा के भी दर्शन होते हैं । इन्हीं ऋषिप्रवर ने आत्मा का परिमाण बताया है—

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥

—श्वेता० ५।९

बाल के अगले हिस्से के सौ टुकड़े कर दिये जाएँ, उस सूक्ष्म सौवें हिस्से के भी सौ हिस्से कर दिये जाएँ, उस सूक्ष्म भाग के समान जीव है, किन्तु उसमें सामर्थ्य बहुत है ।

महर्षि दयानन्द ने भी कहा है—

'जीव एक सूक्ष्म पदार्थ है जो एक परमाणु में भी रह सकता है, उसकी शक्तियाँ शरीर में प्राण, बिजली और नाड़ी आदि के साथ संयुक्त होकर रहती हैं, उनसे सब शरीर का वर्तमान जानता है ।' —सत्यार्थप्रकाश, द्वादशसमुल्लास

श्वेताश्वतर और दयानन्द दोनों ने यह रहस्य वेद तथा योग द्वारा जाना । अथर्ववेद में कहा है—

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते ।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥

—अथर्व० १०।८।२५॥

एक (जीवात्मा) बाल से भी अधिक सूक्ष्म है, और एक (प्रकृति) मानो नहीं दीखती है, उससे अधिक सूक्ष्म और व्यापक जो परमात्मा देवता है, वह मेरा प्यारा है, अर्थात् परमात्मा जीव से सूक्ष्म और जीव में व्यापक है । वह सदा असङ्ग रहने वाला है, अतः जीव को उससे प्यार करना चाहिए। कल्याण-अभिलाषी को प्रकृति के प्यार से ऊपर उठकर परमात्मा से प्रीति लगानी चाहिए । कितना कठिन और कितना सरल है यह कार्य ! यथार्थ ज्ञान के बिना यह सिद्ध नहीं होता ।

ध्यान दीजिए, पहले वेद, पीछे कर्म अर्थात् ज्ञान के बिना कर्म का अनुष्ठान हो नहीं सकता। तभी शास्त्रों में कर्म से पूर्व ज्ञान का नाम आता है।

उत्तरार्ध एक और गम्भीर तत्त्व का संकेत कर रहा है । ज्ञान का पर्य्यवसान अनुष्ठान है । वह ज्ञान जिसे कर्म में परिणत न किया जा सके, वह ज्ञान जिससे कर्म करने में सहायता न मिले, ज्ञान नहीं है, ज्ञानाभास है । इससे स्पष्ट होता है कि वेद कर्मण्यवाद का पोषक है, कर्मत्याग का नहीं। उचित भी यही है । परिच्छिन्न जीवात्मा कर्म के बिना रह नहीं सकता । वह अपने चहुँ ओर के पदार्थ जानना चाहता है, इसके लिए उसे गति करनी होती है । गति का नाम ही कर्म है, अर्थात् कर्म आत्मा का स्वभाव है । ●●

स्वामी सत्यपति जी चल बसे

वैदिक दार्शनिक विद्वान्, योगनिष्ठ, तपोनिष्ठ, सत्योपदेशक, अत्यन्त सरल और सही अर्थों में संन्यासी पूज्य स्वामी सत्यपति जी महाराज अब हमारे मध्य नहीं रहे ।

"दयानन्द सन्देश" परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि ।

—दिनेश कुमार शास्त्री

विरोध तांडव का नहीं, अमेजॉन का कीजिए

–धर्मपाल आर्य

तांडव को लेकर कई दिन से सोशल मीडिया पर विरोध मचा हुआ है। इसी के चलते धार्मिक भावनाओं को आहत करने के लिए वेब सीरीज तांडव के प्रमुख, निदेशक, निर्माता और लेखकों के खिलाफ लखनऊ के हजरतगंज पुलिस स्टेशन में पहली एफ.आई.आर. दर्ज भी की गई है। बढ़ते विरोध को देखते हुए सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने भारत में अमेजन प्राइम वीडियो के अधिकारियों को तलब किया है।

एफ.आई.आर. के अनुसार, पुलिस ने सोशल मीडिया पर तांडव के बारे में प्रतिकूल टिप्पणियाँ देखीं और जाँच में पाया कि यह सीरीज अश्लील है, धार्मिक भावनाओं को आहत करती है और हिंदू देवी-देवताओं को आपत्तिजनक तरीके से चित्रित करती है। प्राथमिकी यह भी कहती है कि सीरीज जाति विभाजन को बढ़ावा देती है और भारत के प्रधानमंत्री की पूरी तरह से नकारात्मक छवि को दर्शाती है। जे.एन.यू. के वामपंथी छात्रों को हीरो और जनेऊ वाले राष्ट्रवादी छात्रों को विलेन। शायद तभी भारतीय जनता पार्टी के सांसद मनोज कोटक ने सूचना और प्रसारण मंत्री प्रकाश जावड़ेकर को पत्र लिखकर तांडव पर हिंदू देवताओं का उपहास करने के लिए प्रतिबंध लगाने की माँग की।

हालाँकि उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के सूचना सलाहकार शलभमणि त्रिपाठी ने एफ.आई.आर. की कॉपी शेयर करते हुए अपने ट्वीट में लिखा, जन भावनाओं के साथ खिलवाड़ बर्दाश्त नहीं, घटिया वेब सीरीज की आड़ में नफरत फैलाने वाली वेब सीरीज तांडव की पूरी टीम के खिलाफ योगी जी के उत्तर प्रदेश में गंभीर धाराओं में मामला दर्ज किया है और जल्द गिरफ्तारी की तैयारी करेगी।

जानकारी के मुताबिक, तांडव वेब सीरीज में दलितों का भयानक अपमान किया गया है, हिन्दू और मुसलमान को लड़ाने और भड़काने वाली बातें की गयी हैं। हिन्दू धर्म का अपमान बार-बार करने की कोशिश की गई हैं। तांडव वेब सीरीज में पुलिस अधिकारियों का अपमान करने की कोशिश की गई है । यानि ये एक जहर से भरी हुई वेब सीरीज है, जो इस देश में अव्यवस्था फैलाना चाहती है। इस वेब सीरीज में ऐसा कंटेंट जानबूझकर डाला गया है ताकि जातिगत हिंसा और धार्मिक हिंसा को बढ़ावा दे और वामपंथियों और पी.एफ.आई. जैसे देश विरोधी संगठनों के एजेंडा को आगे बढ़ाये।

बरहाल ये तो सब चोरों के कारनामे हैं लेकिन प्रश्न ये है कि इन चोरों की माँ कौन है? इनकी माँ है-अमेजन जैसी कंपनी क्योंकि इसने अपने इरादे बहुत पहले जाहिर कर दिए थे। कभी अमेजन अपनी वेबसाइट पर ऐसे पायदान फुटमैट बेचती है, जिन पर शिव और गणेश की तस्वीर छपी हुई होती है। कभी भारतीय ध्वज के अलावा गणेश जी और आध्यात्मिक प्रतीक ओम के चित्रों के साथ डोरमैट और बाथरूम कालीन अपनी वेबसाइट पर बेचती पाई जाती है। इसके अलावा प्लेटफार्म पर देवी-देवताओं के चित्र वाले इनरवियर तक बेचे जाने की बात सामने आ चुकी है।

लोग जब इन सबका विरोध करते हैं तो ऐमेजॉन डाट काम हिन्दू देवी–देवताओं की तस्वीरों से बनी महिलाओं के लिए टांगों और हिप्स पर देवी देवताओं से छपी प्रिंटेड लेंगिंग को बाजार में उतार देती है। जब विरोध बढ़ता है बात आगे तक जाती है तो ऐमेजॉन हिन्दू देवी–देवताओं की तस्वीरों वाली टायलेट सीट अपनी वेबसाइट पर बेचना शुरू कर देती है। जब इसका भयंकर तौर पर विरोध किया जाता है तो कुछ दिन बाद अमेजॉन अपनी साइट पर तिरंगे की तस्वीर वाले डोरमैट की बिक्री शुरू कर देती है। जैसे ही इसकी शिकायत तत्कालीन विदेश मंत्री सुषमा स्वराज जी को मिलती है तो अमेजॉन के अधिकारियों को वीजा नहीं दिये जाने और पूर्व में जिन्हें वीजा जारी हुआ उसे भी रद्द करने की चेतावनी दे दी जाती है तब यह लोग तिरंगे वाली डोरमैट हटाते हैं।

लेकिन इसी दौरान अचानक अमेजॉन पर गाँधी जी की तस्वीर वाली सेंडल्स बेचना शुरू कर देती है। इससे पहले आस्ट्रेलिया में माँ लक्ष्मी की बिकनी पर छपी तस्वीरों के साथ मॉडल दिखाई देती है तो फिर एक नाटक में हिंदुओं में सर्वप्रथम पूजनीय गणेश जी का मजाक उड़ाया जाता है। एक जिसमें गणेश से हिटलर की गुप्तचर सेवा द्वारा पूछताछ करते दिखाया जाता है।

हम विरोध करते है क्योंकि हमारे यहाँ तालिबान हिन्दू तो हैं नहीं, हम तो सर्व धर्म समभाव और सेकुलर कीड़ा काटे लोग हैं तो कम्पनी भगवानों की तस्वीरों वाले जूते बाजार में उतार देती है। लोग विरोध करते है कुछ दिन बाद फिर अचानक आस्ट्रेलिया में बीयर की बोतलों पर लक्ष्मी–गणेश की तस्वीर छाप देती है। हम फिर विरोध करते हैं लेकिन हम अपनी गलतियों से कभी नहीं सीखते हैं और बार–बार इनका भरोसा कर लेते हैं।

तो अचानक अश्लीलता को साहित्य के आईने में ढालने की कोशिशें की जाती हैं, और अमेजॉन किंडल पर हिन्दू महिलाओं और मुस्लिम पुरुषों की सेक्स स्टोरीज पर मनगढ़ंत कहानियों पर किताबें बेचीं जानी शुरू हो जाती हैं। और इस मजहबी साजिश में हिन्दू महिलाओं को शिकार के तौर पर देखा जाता है या कहो उन्हें शिकार बनाया जाता है। बेहद गन्दा चित्रण इनमें होता है कि कोई पढ़कर खुद को शर्मिन्दा महसूस करेगा।

इन सबके बावजूद अगर लोग अब भी एमेजॉन को एक कम्पनी समझते हैं तो भूल है क्योंकि यह सिर्फ हिन्दुओं की भावनाओं को ठेस पहुंचाने के लिए एमेजॉन डाट काम नहीं बल्कि मजहबी डाट काम है। तो इनसे निपटने के लिए तैमूर के बाप का विरोध करना जरुरी नहीं है। वो तो हर जगह यही करेगा उसका मजहब ही यही है। हमें तो अपना तरीका खोजना होगा। कम से कम इतना सबक तो सिखा सकते हैं कि इसे बुरी रेटिंग दी जाए। साथ ही इसका एप अनइंस्टॉल कर दिया जाए। इस वेबसाइट से सामान ना खरीदा जाये बल्कि अन्य पोर्टलों का इस्तेमाल किया जाये ताकि इन्हें सबक मिले क्योंकि जब हम एक होकर ऐसे काम करेंगे तो तैमूर का अब्बा वेबसीरिज नहीं बनाएगा और अगर बना भी लेगा तो शायद ही कोई ओ.टी.टी. प्लेटफार्म पब्लिश करेगा क्योंकि उसे सनातन धर्म की एकता और ताकत का एहसास हो जायेगा। अत: विरोध तांडव का नहीं अमेजॉन का कीजिये। ❑ ❑

प्राञ्चं यज्ञं प्रणतया स्वसाय ।

ऋग्वेद 10.102.2

प्रत्येक शुभ कार्य यज्ञ के साथ आरम्भ करें।

वीर बालक हकीकत राय के बलिदान की कहानी

(सन्दर्भ ग्रन्थ— 'धर्मवीर हकीकत राय' द्वारा डा० गोकुल चन्द नारंग)

मुगल सम्राट मुहम्मद शाह रंगीला के शासन काल में धार्मवीर हकीकत राय का जन्म पंजाब के प्रसिद्ध नगर स्यालकोट (अब पाकिस्तान में) में सन् १७१९ में हुआ। पाँच वर्ष की आयु में हकीकत राय को विद्वान पण्डित जी के पास हिन्दी-संस्कृत पढ़ने के लिए भेज दिया गया। उसके पिता भागमल सरकारी कार्यालय में क्लर्क थे। उस समय सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए फारसी भाषा का ज्ञान आवश्यक था। मुल्ला लोग मस्जिदों में ही फारसी पढ़ाया करते थे। दस वर्ष की आयु में हकीकत राय को भी मस्जिद में मुल्ला के पास फारसी पढ़ने के लिए भेजा गया।

मस्जिद में मुसलमान लड़के हिन्दू विद्यार्थियों से छेड़खानी करते रहते थे और उनके देवी देवताओं की निन्दा करके हिन्दू धर्म को नीचा दिखाते थे। हकीकत राय अत्यन्त मेधावी एवं तीक्ष्ण बुद्धि वाला था। वह आम तौर पर मुसलमान लड़कों को बहस में हरा देता था। अतः मुसलमान लड़के हकीकत राय से चिढ़ते थे तथा उसके विरुद्ध जहर उगलते रहते थे। एक दिन मुल्ला की अनुपस्थिति में उन्होंने हकीकत राय के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा, उसे बहुत पीटा और जब मुल्ला आया उसके पास हकीकत के विरुद्ध आरोप लगाया कि उसने हजरत मुहम्मद साहब की बेटी फातिमा को गाली दी है। यह सुनते ही मुल्ला आग बबूला हो गया और हकीकत को पकड़ कर नगर के शासक के पास ले गया। शासक ने नगर के मुसलमान काजियों को बुलाया और उनसे हकीकत के अपराध के लिए फतवा (इस्लाम के अनुसार फैसला) माँगा। सब काजियों ने एक मत से निर्णय दिया कि हकीकत ने जो अपराध किया है उसका दण्ड मृत्यु है। परन्तु यदि वह मुसलमान बन जाए तो उसे क्षमा किया जा सकता है। यह खबर शहर में आग की भान्ति फैल गई।

हकीकत राय के पिता के साथ बहुत से प्रमुख हिन्दू इकट्ठे होकर शहर के शासक के पास गये और कहा कि हकीकत बालक है, नादान है, इसलिए उसे क्षमा कर दिया जाये। परन्तु वहाँ न्याय कहाँ ! अन्त में शहर के शासक ने मामला गम्भीर देखकर इसे लाहौर के बड़े शासक के पास भेज दिया। लाहौर में भी मुल्ला लोग इकट्ठे होकर उसी बात पर अड़े रहे कि हकीकत मुसलमान बन जाए अन्यथा उसका कत्ल कर दिया जाये।

लाहौर के शासक ने हकीकत राय को मुसलमान बनने के लिए लालच भी दिए। उसके माता-पिता ने भी पुत्र की जान बचाने के लिए उसे मुसलमान बनने की सलाह दी। परन्तु पन्द्रह वर्ष के वीर बालक हकीकत राय ने मुसलमान बनना स्वीकार नहीं किया।

सन् १७३४ में बसन्त पंचमी के दिन हकीकत राय को लाहौर की कत्लगाह में ले जाया गया। सारे शहर में हाहाकार मच गया। हजारों नर-नारियों के जमघट के सामने जल्लाद ने एक बार फिर हकीकत राय को कहा कि वह इस्लाम स्वीकार करके अपनी जान बचाले, पर हकीकत राय न माना। जल्लाद ने तलवार के एक ही वार से हकीकत राय का सर तन से अलग कर दिया। लाहौर के हिन्दुओं ने शहर से चार मील की दूरी पर शालीमार बाग के पास उसका अंतिम संस्कार कर दिया।

वीर बालक हकीकत राय के बलिदान की कहानी युगों-युगों तक प्रेरणा देती रहेगी ❑❑

प्रस्तुति : कृष्णचन्द्र गर्ग
0172-4010679 E-mail : kcg831@yahoo.com

वेदों में अलंकार

—उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर (मो०—९८४५०५८३१०)

पिछले माह के विषय को आगे बढ़ाते हुए इस बार हम वेदों में कुछ अलंकारों के प्रयोगों को देखते हैं, जिसमें वेदों की काव्यता सिद्ध होगी । अलंकार वे होते हैं जिससे भाषा भूषित होती है। इनसे कथन सुपोषित तो होता ही है, परन्तु श्रोता को सुनने में भी आनन्द आता है ।

वेद काव्य हैं, यह परमात्मा ने स्वयं उद्घोषित किया है—"**....देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥अथर्ववेदः १०।८।३२॥**" अर्थात् वेद परमात्म-देव के काव्य हैं, जो न कभी लुप्त होते हैं, न कभी अप्रासंगिक होते हैं । इसी प्रकार वेद परमात्मा को कवि बताते हैं—"**....कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूरयाथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजुर्वेदः ४०।८॥** —अर्थात् वह ईश्वर कवि = क्रान्तदर्शी है (क्योंकि वह उसको देख लेता है जो औरों को नहीं दिखता; इसीलिए लौकिक कवि को भी कवि कहते हैं क्योंकि वह अपनी कविता में एक ऐसा नया विचार गूंथ देता है, जो कि औरों को उस प्रकार नहीं दिखता); मनन करने वाला मनीषी है, सब ओर व्याप्त है, स्वयं प्रकट होता है, और अपनी सनातन प्रजाओं (=शरीरबद्ध आत्माओं) के लिए वेदों द्वारा लौकिक व आलौकिक विषयों को जानता है । यहाँ 'कवि' पद के पूर्वपठित होने से, और बाद में वेदों का कथन होने से, वेदों के काव्य होने का पुनः संकेत मिलता है ।

परमात्मा के कवि होने और वेदों के काव्य होने के स्थापित हो जाने पर, वेदों में अलंकारों का होना निश्चित ही है । महर्षि दयानन्द ने यत्र-तत्र इनका संकेत दिया है । हम उनको और अन्य अलंकारों को पाने का भी यत्न करते हैं ।

१. **यमक**—यमक में स्वर और व्यञ्जनों की क्रम से आवृत्ति होती है । शब्दालंकार होने से यह समझने में सुगम है, इसलिए प्रथम इसको ही लेते हैं । तो इस लयपूर्ण मन्त्र को देखिये—

सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका ।
उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु ॥

ऋग्वेदः १०।१०६।६॥

यहाँ 'री' ४ बार पठित है, 'फरी' ३ बार, 'तुर्फरी' २ बार, व 'जरायु' 'मरायु' में भी साम्य है । इस प्रकार यहाँ यमकालंकार का सुन्दर प्रयोग है । इस सूक्त के अन्य मन्त्रों में भी यमक पया जाता है, जैसे—"**....मेषेवेषा सपर्या पुरीषा (५)**", "**पज्रेव चर्चरं...तर्तरीथ...पर्फरत् ...(७)**" आदि ।

२. **श्लेष**—ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में ही यह अलंकार प्राप्त हो जाता है, जिसमें पदों के एक से अधिक अर्थ होते हैं, जैसे—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतरं रत्नधातमम् ॥

॥ ऋग्वेदः १।१।१॥

परमात्मा के आध्यात्मिक पक्ष में इसके अर्थ हुए—सर्वज्ञान-प्रकाशक, सृष्टि के आदि में उसको पहले धारण करने वाले, हमारे विशेष कर्मों को ग्रहण करने वाले, दिव्य गुणों वाले, ऋतु-ऋतु

में पूजनीय, रत्नों के समान सब ऐश्वर्यों के धारण करने और देने की मैं स्तुति करती हूँ ।

भौतिक अग्नि के आधिदैविक पक्ष में अर्थ हुआ–अन्धकार–नाशक, शिल्प, अग्निहोत्र, आदि कार्यों में सबसे पूर्व स्थापित किया जाने वाले, युद्धादि में विशेष शस्त्र प्रदान कराने से जिताने वाले, शिल्पादि के साधनभूत, स्वर्ण, रत्नादियों को प्राप्त कराने वाले की मैं इच्छा करती हूँ और उनके गुणों का उपदेश करती हूँ ।

प्रभु की सबसे चमत्कारिक देन होने से, उनके नामों में साम्य जैसे दोनों 'अग्नियों' के गुणों को स्वतः उजागर करता है । इस प्रकार वेदमन्त्रों में अनेकत्र तीन अर्थ शिलष्ट पाए जाते हैं– आधिदैविक, आधिभौतिक व आध्यात्मिक ।

३. **अतिशयोक्तिः–**इस अलंकार में बढ़चढ़ के किसी वस्तु को बताया जाता है, जो कि वास्तविकता के परे होता है, परन्तु वस्तु की महानता का द्योतक होता है, यथा–

"....त्रीणि पदानि निहिता गुहा सत् यस्तानि वेद स पितुः पितासत् ॥"

यजुर्वेदः ३२।९॥

अर्थात् जिसकी बुद्धि–रूपी गुफा में परमात्मा के तीन पद–महर्षि द्वारा बताए गए सृष्टि, स्थिति व प्रलय अथवा भूत, भविष्य व वर्तमान काल–निहित होते हैं, वह अपने पिता का भी पिता होता है । अवश्य ही तत्त्वज्ञानी अपने पिता का पिता नहीं बन जाता, परन्तु ज्ञान में उससे आगे निकल जाने से, वह अपने पिता को भी ज्ञान देन में समर्थ हो जाता है, जिस प्रकार एक पिता अपनी सन्तान को ज्ञान देता है । कितनी सुन्दरता से यह बात कही गई है कि इसको भूलना ही असम्भव है ।

४. **उत्प्रेक्षा–**इस अलंकार में उपमान कल्पित होता है और उसकी उपमेय में केवल सम्भावना होती है । इसका उदाहरण हमें इस प्रकार प्राप्त होता है–

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणिरूपमश्विनौ व्यात्त्म् ॥....

यजुर्वेदः ३१।२२॥

अर्थात् उस पुरुष–रूपी ब्रह्म की जैसे श्री और नक्ष्मी दो पत्नियाँ हैं, दिन और रात जैसे दो बगले हैं, नखा रूप को जैसे चित्रित करते हैं और सूर्य व चन्द्रमा जेसे फैले मुख के समान वर्तमान हैं । यहाँ अवश्य ही परमात्मा में ये सब अंगरूप में नहीं घटते, परन्तु इस उत्पेक्षा द्वारा यह सम्भावना प्रकट करके, श्री, लक्ष्मी, अहोरात्र, नक्षत्र और अश्वियों का महत्व दर्शाया गया है ।

५. **परिणाम–**इस अलंकार में उपमेय को उपमान में आरोपित किया जाता है, जहाँ उसकी अर्थ बताने में केवल पदवाच्य ही नहीं, परन्तु कुछ अन्य उपयोगिता भी होती है, यथा–

ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीः... ॥ ऋग्वेदः ४।२३।८॥

अर्थात् सच्चाई की सेनाएं अति प्राचीन हैं । यहाँ सत्य–वाक्यों, सत्य–शास्त्रों को 'सेना' कहने से यह तात्पर्य है कि वे वाक्य असत्य वाक्यों को निरस्त कर देते, उखाड़ फेंकते हैं, अन्यथा सत्य की कोई वास्तविक सेनाएं नहीं होतीं । इससे सहसा हमारे मन में एक चित्र बन जाता है, जिससे कि वाक्य का महत्त्व पूर्णतया बुद्धि में बैठ जाता है । यहाँ 'सेना' उपमान 'वचन' उपमेय पर आरोपित है, और 'ऋत' (सत्य) के वचन की शक्ति का ग्रहण करा रहा है ।

६. **दृष्टान्त**—इस अलंकार में प्रस्तुत (=लक्ष्य) अंश को समझने के लिए, अन्य एक वाक्य दिया जाता है जिसमें धर्म एकरूप नहीं होता, परन्तु वाक्य के सब अंश मिलकर समानता दर्शाते हैं। इन प्रस्तुत और अप्रस्तुत अंश के विभिन्न भागों की समानता को 'बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव' कहते हैं। इसका एक सुन्दर उदाहरण है—

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवः।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदाइव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ॥
॥ ऋग्वेदः १०।७१।७॥

अर्थात् सब मनुष्य आँख-कान वाले होने से समान ख्यान = वर्णन वाले (अर्थात् 'सखा') होते हैं, तथापि मन की तीव्रता में वे असमान होते हैं, जिस प्रकार भिन्न लम्बाई वाले शरीर वाले जन एक ही तालाब में जब नहाते हैं, तब एक के जल मुंह तक आता है, जबकि दूसरे के कमर तक आता है। यहाँ आँख-कान व तालाब, और मन की गति व शरीर की लम्बाई में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव दृष्टिगोचर होता है।

इस सूक्त में अन्य भी अनेक अलंकार प्राप्त होते हैं, इसलिए यह सूक्त बहुत ही प्रिय लगता है।

७. **निदर्शना**—यह अलंकार दृष्टान्त के समान होता है, परन्तु यहाँ अप्रस्तुत वाक्य प्रस्तुत वाक्य की पूर्ति करता है, यथा—

उत त्वः पश्वयन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्त्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥
ऋग्वेदः १०।७१।४॥

अर्थात् भाषा, विशेषकर वैदिक संस्कृत भाषा, जिसका यहाँ प्रकरण है, उसको लिखा देखकर कोई तो उसको समझ नहीं पाते (लिपि के अज्ञान से); कोई तो उसे सुनकर समझ नहीं पाते, शब्दार्थ का बोध न होने से और किसी के लिए यह भाषा अपने 'तन' को—अपने गूढ़, छुपे हुए अर्थ को—प्रकट कर देती है, जिस प्रकार गृहस्थ-कर्म की कामना करती हुई, सुन्दर वस्त्र पहनी हुई पत्नी अपने पति के लिए अपने शरीर को प्रकट कर देती है। यहाँ 'भाषा का तन प्रकट होने' का अर्थ पत्नी के ऊपर ही समाप्त होता है, इसलिए यह निदर्शना अलंकार है।

८. **अप्रस्तुतप्रशंसा**—इस अलंकार में केवल अप्रस्तुत विषय का वर्णन होता है जिससे प्रस्तुत की प्रतीति व्यंग्य से होती है। इसका प्रसिद्ध उदाहरण है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नयो अभि चाकशीति ॥
ऋग्वेदः १०।१६४।२०, अथर्ववेदः ९।९।२०॥

अर्थात् दो सुन्दर परों वाले पक्षी, जो एक-दूसरे से साथ जुड़े हुए हैं, वे एक वृक्ष का आश्रय लिए हैं। उनमें से एक तो वृक्ष के स्वादिष्ट फल खा रहा है, जबकि दूसरा उसको सामने से देख रहा है। यहाँ स्पष्ट ही है कि दो पक्षियों की चर्चा लक्षित नहीं है। और लक्षित = प्रस्तुत विषय परमात्मा, जीवात्मा व प्राकृत संसार भी स्पष्ट ज्ञात होता है—दो पक्षी का जोड़ा परमात्मा व जीवात्मा

का है जो कि व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध से जुड़ा हुआ है और यह संसार वृक्ष है । प्रकृति वृक्षरूपी संसार के विभिन्न स्वादिष्ट भोगों को उत्पन्न करने में जुटी है, परमात्मा संसार के सुखों का भोग नही कर रहे, जीवात्मा कर रहा है और परमात्मा उसके प्रत्येक कर्म को अनिमिष देख रहे हैं । इस प्रकार यह अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है ।

महर्षि दयानन्द ने यहाँ रूपकालंकार कहा है । पुरानी पद्धति के अनुसार वह ठीक भी है, परन्तु अर्वाचीन आलंकारिकों ने अलंकारों के बहुत विभाजन कर दिए हैं । मैंने इस अर्वाचीन मत के अनुसार ही यहाँ अलंकारों का निर्देश किया है ।

इस अलंकर का एक और प्रसिद्ध उदाहरण है–

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश ।।

ऋग्वेदः १०।५८।३, यजुर्वेदः १७।९१।।

अर्थात् एक महान् कान्तियुक्त बैल के चार सींग हैं, तीन पैर हैं, दो सिर हैं और सात हाथ हैं । तीन प्रकार से बंधा हुआ यह बैल बहुत चिल्लाता है और मरण युक्तों में घुस जाता है। यहाँ परमात्मा वह बैल है और मनुष्य वे मरणयुक्त हैं जिनमें चार वेदादियों से परमात्मा व्याप्त हो रहा है । यास्क ने निरुक्त में बैल की यज्ञपरक और शब्दपरक व्याख्या भी करी है । इस प्रकार यहाँ श्लेषालंकार भी है ।

९. **विषम**–इस अलंकार में कारण और कार्य के गुणों की विषमता = विरुद्धता को प्रस्तुत करके चमत्कार उत्पन्न किया जाता है । यथा–

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।....

ऋग्वेदः १।१६४।४।।

अर्थात् किसने देखा है प्रथम उत्पन्न होने वाले को, जिस अस्थि वाले को बिना अस्थि वाला धारण करता है । यहाँ जीवात्मा अस्थिहीन है और प्राणी अस्थियुक्त । मन्त्र का तात्पर्य है कि जीवात्मा तो प्रकृति-शून्य है, सो उसमें अस्थि होना सम्भव ही नहीं है । तथापि वह इस अस्थिवाले शरीर को धारण करता है । और प्राणियों की इस पहली उत्पत्ति को किसने देखा है? अर्थात् किसी ने भी नहीं । यहाँ बिना अस्थि वाला कारण जीवात्मा अस्थि वाले प्राणी (कार्य) में परिवर्तित हो जाता है । यह कार्य-कारण गुणों में विषमता है और उससे जनित चमत्कार भी स्पष्ट ही है ।

इस प्रकार हम पाते हैं कि वेदों में सब प्रकार के अलंकार भरे पड़े हैं और यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि वेद काव्य के उत्कृष्ट व अद्भुत उदाहरण हैं । मैंने तो यहाँ केवल एक विहंगम दृष्टि प्रस्तुत की है । इससे आप भी अन्य अलंकार पहचानने में समर्थ हो जायेंगे, और आपके मन में यह दुविधा न रहेगी कि वेद में अलंकार हैं भी कि वह एक नीरस ग्रन्थ है जिसे केवल छन्दयुक्त होने के कारण काव्य की पदवी दे दी गई है । अपितु जो अलंकारों की विशेषताएं नहीं भी जानते, वे भी वेदों को पढ़के इसीलिए भाव-विभोर हो जाते हैं कि वेदों में विषय इतने रोचक, मार्मिक व हृदयस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत किए गए हैं ❑ ❑

स्वराज केसरी–

आर्य नेता लाला लाजपत राय

–डॉ० विवेक आर्य (मो०–8076985517)

आर्यसमाज मेरे लिए माता के समान है और वैदिक धर्म मुझे पिता तुल्य प्यारा है

–लाला लाजपतराय

आजादी के महानायकों में लाला लाजपतराय का नाम ही देशवासियों में स्फूर्ति तथा प्रेरणा का संचार करता है । अपने देश धर्म तथा संस्कृति के लिए उनमें जो प्रबल प्रेम तथा आदर था उसी के कारण वे स्वयं को राष्ट्र के लिए समर्पित कर अपना जीवन दे सके । भारत को स्वाधीनता दिखाने में उनका त्याग, बलिदान तथा देशभक्ति अद्वितीय और अनुपम थी । उनके बहुविधि क्रियाकलाप में साहित्य–लेखन एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। एक साधारण से परिवार में लाला जी का जन्म २८ जनवरी १८६५ को पंजाब राज्य के मोंगा जिले के दुधिके गाँव में हुआ था । उनके पिता श्री लाला राधा किशन आजाद जी सरकारी स्कूल में उर्दू के शिक्षक थे जबकि उनकी माता गुलाब देवी घरेलू धार्मिक महिला थीं। लाला राधा किशन जी के विषय में लाला जी स्वयं लिखते हैं कि मेरे पिता पर इस्लाम का ऐसा रंग चढ़ा था कि उन्होंने रोजे रखना शुरू कर दिया था । सौभाग्य से मुझे आर्यसमाज का साथ मिला जिसके कारण मेरा परिवार मुसलमान बनने से बच गया । लाला जी बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि थे व धन आदि की अनेक कठिनाइयों के पश्चात् भी उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की । १८८० में कलकत्ता यूनिवर्सिटी व पंजाब यूनिवर्सिटी की प्रवेश परीक्षाएं पास करने के बाद उन्होंने लाहौर गवर्नमेंट कॉलेज में दाखिला ले लिया व कानून की पढ़ाई प्रारम्भ की । लेकिन घर की माली हालत ठीक न होन के कारण दो वर्ष तक उनकी पढ़ाई बाधित रही । लाहौर में बिताया गया समय लाला जी के जीवन में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण साबित हुआ और यहीं उनके भावी जीवन की रूप–रेखा निर्मित हो गयी । उन्होंने भारत के गौरवमय इतिहास का अध्ययन किया और महान भारतीयों के विषय में पढ़कर उनका हृदय द्रवित हो उठा । यहीं से उनके मन में राष्ट्र सेवा की भावना का बीजारोपण हो गया । कानून की पढ़ाई के दौरान वह लाला हंसराज जी व पण्डित गुरुदत्त जी जैसे क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आये । यह तीनों अच्छे मित्र बन गये और १८८२ में आर्यसमाज के सदस्य बन गए । उस समय आर्यसमाज सुधार की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था और यह पंजाब के युवाओं में अत्यधिक लोकप्रिय था ।

३० अक्टूबर, १८८३ को जब अजमेर में ऋषि दयानन्द का देहान्त हो गया तो ९ नवम्बर, १८८३ को लाहौर आर्यसमाज की ओर एक शोकसभा का आयोजन किया गया । इस सभा के अन्त में यह निश्चित हुआ कि स्वामी जी की स्मृति में एक ऐसे महाविद्यालय की स्थापना की जाये जिसमें वैदिक साहित्य, संस्कृति तथा हिन्दी की उच्च शिक्षा के साथ–साथ अंग्रेजी और पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान में भी छात्रों को दक्षता प्राप्त कराई जाये । १८८६ में जब इस शिक्षण संस्थान की

स्थापना हुई तो आर्यसमाज के अन्य नेताओं के साथ लाला लाजपतराय का भी इसके संचालन में महत्वपूर्ण योगदान रहा तथा वे कालान्तर में डी०ए०वी० कालेज, लाहौर के महान स्तम्भ बने।

१८८५ में उन्होंने लाहौर के गवर्नमेंट कॉलेज से द्वितीय श्रेणी में वकालत की परीक्षा पास की और हिसार में अपनी कानूनी प्रैक्टिस प्रारम्भ कर दी । प्रैक्टिस के साथ-साथ वह आर्यसमाज के सक्रिय कार्यकर्ता भी बने रहे । स्वामी दयानन्द जी की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने अंग्लो-वैदिक कॉलेज हेतु धन एकत्रित करने में सहयोग किया। आर्यसमाज के तीन लक्ष्य थे : समाज सुधार, हिन्दू धर्म की उन्नति और शिक्षा का प्रसार । वह अधि कांश समय आर्यसमाज के सामाजिक कार्यों में ही लगे रहते । वह सभी सम्प्रदायों की भलाई के प्रयास करते थे और इसी का नतीजा था कि वह हिसार म्यूनिसिपल्टी हेतु निर्विरोध चुने गए जहाँ की अधिकांश जनसंख्या मुस्लिम थी । १८८८ में वे प्रथम बार कांग्रेस के इलाहाबाद अधिवेशन में सम्मिलित हुए जिनकी अध्यक्षता मि० जार्ज यूल ने की थी । उनका जोरदार स्वागत हुआ और उनके उर्दू भाषण ने सभी का मन मोह लिया । अपनी योग्यता के बल पर वह जल्द ही कांग्रेस के लोकप्रिय नेता बन गए । लगभग इसी समय जब सर सैयद अहमद खान ने कांग्रेस से अलग होकर मुस्लिम समुदाय से यह कहना शुरू किया कि उसे कांग्रेस में जाने की बजाय अंग्रेज सरकार का समर्थन करना चाहिए तब लाला जी ने इसके विरोध में उन्हें "कोहिनूर" नामक उर्दू साप्ताहिक में खुले पत्र लिखे । इन पत्रों में लाला जी ने सर सैयद अहमद खान को उन्हीं के पुराने लेखों की याद दिलवाई जिसमें उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता की हिमाकत करी थी और आज वही सर सैयद अहमद खान हिन्दू और मुसलमान के बीच में दरार उत्पन्न कर रहे हैं । लाला जी को इन लेखों से काफी प्रशंसा मिली । उनके पिताजी ने प्रसन्न होकर उन लेखों को दोबारा छपवा कर वितरित तक किया ।

युवाओं को राष्ट्र भक्ति का सन्देश देने के लिए उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा शिवाजी, स्वामी दयानन्द, मेजिनी, गैरीबाल्डी जैसे प्रसिद्ध लोगों की आत्मकथाएं अनुवादित व प्रकाशित कीं । इन्हें पढ़कर अन्य लोगों ने भी स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु संघर्ष की प्रेरणा प्रापत की । लाला जी जनसेवा के कार्यों में तो सदैव ही आगे रहते थे। इसीलिए १८९६ में जब सेन्ट्रल प्रोविंस में भयानक सूखा पड़ा, तब लाला जी ने वहाँ अविस्मरणीय सेवा कार्य किया । जब वहाँ सैकड़ों निर्धन, अनाथ, असहाय मात्र ईसाई मिशनरियों की दया पर निर्भर थे और वह उन्हें सहायता के बदले अपने धर्म में परिवर्तित कर रहीं थीं तब लाला जी ने अनाथों के लिए एक आन्दोलन चलाया व जबलपुर, बिलासपुर, आदि अनेक जिलों के अनाथ बालकों को बचाया और उन्हें पंजाब में आर्यसमाज के अनाथालय में ले आये । उन्होंने कभी भी धन को सेवा से ज्यादा महत्त्व नहीं दिया और जब उन्हें प्रतीत हुआ कि वकालत के साथ-साथ समाज-सेवा के लिए अधिक समय नहीं मिल पा रहा है तो उन्होंने अपनी वकालत की प्रैक्टिस कम कर दी ।

इसी प्रकार १८९९ में जब पंजाब, राजस्थान, सेंट्रल प्रोविंस, आदि में और भी भयावह अकाल पड़ा और १९०५ में कांगड़ा जिले में भूकम्प के कारण जन-धन की भारी हानि हुई तब भी लाला जी ने आर्यसमाज के कार्यकर्ता के रूप में असहायों की तन-मन-धन से सेवा सहायता की।

अकाल, प्लेग, बाढ़ आदि अकाल परिस्थि-तियों में सेवा करते समय लाला जी ने पाया कि

ईसाई समाज निर्धन हिन्दुओं की आपातकाल में सेवा इस उद्देश्य से नहीं करता कि यह मानवता की सेवा कर रहा है बल्कि इसलिए करता है ताकि अनाथ हुए बच्चों अथवा निराश्रित हुए परिवारों को सहायता के नाम पर ईसाई बनाया जा सके। लाला जी ने इस अनैतिक कार्य को रोकने का प्रयास किया तो ईसाई मिशनरी ने उन पर कोर्ट में केस तक कर दिया था । लाला जी सत्य कार्य कर रहे थे इसलिए विजयश्री उन्हीं को मिली ।

उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण योगदन दिया । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में उन्होंने रचनात्मकता, राष्ट्र निर्माण व आत्म निर्भरता पर जोर दिया । कांगेस में बाल गंगाधर तिलक जी व बिपिनचन्द्र पाल जी के साथ उग्रवादी विचारधारा से सहमत थे और यह तीनों "लाल-बाल-पाल" नाम से प्रसिद्ध थे । जहाँ उदारवादी कांग्रेसी अंग्रेज सरकार की कृपा चाहते थे वहीं उग्रवादी कांग्रेसी अपना हक चाहते थे । लाला जी मानते थे कि स्वतन्त्रता भीख और प्रार्थना से नहीं बल्कि संघर्ष और बलिदान से ही मिलेगी । १८८५ में अपनी स्थापना से लेकर लगभग बीस वर्षों तक कांग्रेस ने एक राजभवन संस्था का चरित्र बनाये रखा था । इसके नेतागण वर्ष में एक बार बड़े दिन की छुट्टियों में देश के किसी नगर में एकत्रित होने और विनम्रतापूर्वक शासनों के सूत्रधारों (अंगेजी) से सरकारी उच्च सेवाओं में भारतीयों को अधिकाधिक संख्या में प्रविष्ट युवराज के भारत आगमन पर उनका स्वागत करने का प्रस्ताव आया तो लाला जी ने उनका डटकर विरोध किया । कांग्रेस के मंच से यह अपनी किस्म का पहला तेजस्वी भाषण हुआ जिसमें देश की अस्मिता प्रकट हुई थी । १९०७ में जब पंजाब के किसानों में अपने अधिकारों को लेकर चेतना उत्पन्न हुई तो सरकार का क्रोध लाला जी तथा सरदार अजीतसिंह (शहीद भगतसिंह के चाचा) पर उमड़ पड़ा और और इन दोनों देशभक्त नेताओं को देश से निर्वासित कर उन्हें पड़ोसी देश बर्मा के मांडले नगर में नजरबन्द कर दिया । किन्तु देशवासियों द्वारा सरकार के इस दमनपूर्ण कार्य का प्रबल विरोध किये जाने पर सरकार को अपना यह आदेश वापस लेना पड़ा । लाला जी पुनः स्वदेश आये और देशवासियों ने उनका भावभीना स्वागत किया । लाला जी के राजनैतिक जीवन की कहानी अत्यन्त रोमंचक तो है ही, भारतीयों को स्वदेश-हित के लिए बलिदान तथा महान् त्याग करने की प्रेरणा भी देती है ।

१९०७-०८ में उड़ीसा मध्यप्रदेश तथा संयुक्त प्रांत (वर्तमान उत्तर प्रदेश) से भी भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा और लाला जी को पीड़ितों की सहायता के लिए आगे आना पड़ा । पुनः राजनैतिक आन्दोलन में १९०७ के सूरत के प्रसिद्ध कांग्रेस अधिवेशन में लाला लाजपतराय ने अपने सहयोगियों के द्वारा राजनीति में गरम दल की विचारधारा का सूत्रपात कर दिया था और जनता को यह विश्वास दिलाने में सफल हो गये थे कि केवल प्रस्ताव पास करने और गिड़गिड़ाने से स्वतन्त्रता मिलने वाली नहीं है । हम यह देख चुके हैं कि जनभावना को देखते हुए अंगेजों को उनके देश-निर्वासन को रद्द करना पड़ा था । वे स्वदेश आये और पुनः स्वधीनता के संघर्ष में जुट गये । लाला जी मानते थे कि राष्ट्रिय हित के लिए विदेशों में भी भारत के समर्थन में प्रचार करने हेतु एक संगठन की जरूरत है ताकि पूरी दुनिया के सामने भारत का पक्ष रखा जा सके और अंगेज सरकार का अन्याय उजागर किया जा सके । प्रथम विश्व युद्ध (१९१४-१८) के दौरान वे एक प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य के रूप में पुनः इंग्लैण्ड गये और देश की आजादी के

लिए प्रबल जनमत जागृत किया । वहाँ से वे जापान होते हुए अमरीका चले गये और स्वाधीनता-प्रेमी अमेरिकावासियों के समक्ष भारत की स्वाधीनता के पथ प्रबलता से प्रस्तुत किया। यहाँ से वह अमेरिका गए जहाँ उन्होंने "इण्डियन होम लीग सोसायटी ऑफ अमेरिका" की स्थापना की और "यंग इण्डिया" नामक पुस्तक लिखी। इसमें अंग्रेज सरकार का कच्चा चिट्ठा खोला गया था, इसलिए ब्रिटिश सरकार ने इसे प्रकाशित होने से पूर्व ही इंग्लैण्ड और भारत में प्रतिबन्धित कर दिया । २० फरवरी, १९२० को जब वे स्वदेश लौटे तो अमृतसर में जलियांवाला बाग काण्ड हो चुका था, और सारा राष्ट्र असन्तोष तथा क्षोभ की ज्वाला में जल रहा था। इसी बीच महात्मा गाँधी ने असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया तो लाला जी पूर्ण तत्परता के साथ इस संघर्ष में जुट गये। १९२० में ही वे कलकत्ता में आयोजित कांगेस के विशेष अधिवेशन के अध्यक्ष बने । उन दिनों सरकारी शिक्षण संस्थानों के बहिष्कार, विदेशी वस्त्रों के त्याग, अदालतों का बहिष्कार, शराब के विरुद्ध आन्दोलन, चरखा और खादी का प्रचार जैसे कार्यक्रमों को कांग्रेस ने अपने हाथ में ले रखा था, जिसके कारण जनता में एक नई चेतना का प्रादुर्भाव हो चला था । इसी समय लाला जी को कारावास का दण्ड मिला, किन्तु खराब स्वास्थ्य के कारण वे जल्दी ही रिहा कर दिये गये । १९२४ में लाला जी कांग्रेस के अन्तर्गत ही बनी स्वराज्य पार्टी में शामिल हो गये और केन्द्रीय धारा सभा (सेंट्रल असेम्बली) के सदस्य चुन लिये गये । जब उनका पं० मोतीलाल नेहरू से कतिपय राजनैतिक प्रश्नों पर मतभेद हो गया तो उन्होंने नेशनलिस्ट पार्टी का गठन किया और पुनः असेम्बली में पहुँच गये । अन्य विचारशील नेताओं की भाँति लाला जी भी कांग्रेस में दिन-प्रतिदिन बढ़ने वाली मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति से अप्रसन्नता अनुभव करते थे, इसलिए स्वामी श्रद्धानन्द तथा पं० मदनमोहन मालवीय के सहयोग से उन्होंने हिन्दू महासभा के कार्य को आगे बढ़ाया। १९२५ में उन्हें हिन्दू महासभा के कलकत्ता अधिवेशन का अध्यक्ष भी बनाया गया। ध्यातव्य है कि उन दिनों हिन्दू महासभा का कोई स्पष्ट राजनैतिक कार्यक्रम नहीं था और वह मुख्य रूप से हिन्दू संगठन, अछूतोद्धार, शुद्धि जैसे सामाजिक कार्यक्रमों में ही दिलचस्पी लेती थी। इसी कारण कांग्रेस से उसे थोड़ा भी विरोध नहीं था । यद्यपि संकीर्ण दृष्टि से अनेक राजनैतिक कर्मी लाला जी के हिन्दू महासभा में रुचि लेने से नाराज भी हुए, किन्तु उन्होंने इसकी कभी परवाह नहीं की और वे अपने कर्त्तव्य पालन में ही लगे रहे ।

सन् १९२५ में कलकत्ता (अब कोलकाता) तथा देश के अन्य भागों में मजहबी जुनूनियों ने साम्प्रदायिक दंगे भड़काकर बहुत से निर्दोष हिन्दुओं की हत्या कर दी थी । मुस्लिम लीगियों ने सभी सीमाएं पार कर असंख्य हिन्दुओं के मकानों-दुकानों को जला डाला था। तब १९२५ में ही कलकत्ता में हिन्दू महासभा का अधिवेशन आयोजित किया गया । लाला लाजपतराय ने इसकी अध्यक्षता की थी तथा महामना पं० मदन मोहन मालवीय ने उद्घाटन । इसके कुछ दिनों पहले ही आर्यसमाज के एक जुलूस के मस्जिद के सामने से गुजरने पर मुस्लिमों ने "अल्लाह हो अकबर" के नारों के साथ अचानक हमला बोल दिया था तथा अनेक हिन्दुओं की हत्या कर दी थी । आर्यसमाज तथा हिन्दू महासभा ने हिन्दुओं का मनोबल बनाए रखने के उद्देश्य से इस अधि वेशन का आयोजन किया था । अधिवेशन में डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी, श्रीमती सरलादेवी चौधरानी

तथा आर्य समाजी नेता गोविन्द गुप्त भी उपस्थित थे । सेठ जुगल किशोर बिरला ने विशेष रूप से इसे सफल बनाने में योगदान किया था । लाला जी तथा मालवीय जी ने इस अधिवेशन में हिन्दू संगठन पर बल देते हुए चेतावनी दी थी कि यदि हिन्दू समाज जाग्रत व संगठित नहीं हुआ तथा हिन्दू मुस्लिम एकता की मृगमारीचिका में भटककर सोता रहा तो उसके अस्तित्व के लिए भीषण खतरा पैदा हो सकता है । लाला जी ने भविष्यवाणी की थी कि मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में हिन्दू महिलाओं का सम्मान सुरक्षित नहीं रहेगा।

स्वाधीनता सेनानी तथा पंजाब की अग्रणी आर्यसमाजी विदुषी कु० लज्जावती लाला लाजपतराय के प्रति अनन्य श्रद्धा भाव रखती थीं। लाला लाजपतराय भी उन्हें पुत्री की तरह स्नेह देते थे। कु० लज्जावती का लाला जी सम्बन्धी संस्मरणात्मक लेख हाल ही में श्री विष्णु शरण द्वारा सम्पादित ग्रन्थ लाला लाजपतराय और नजदीक से" में प्रकाशित हुआ है । इसमें लज्जावती लिखती हैं–"लाला जी के व्यक्तित्त्व को यदि बहुत कम शब्दों में व्यक्त करने का प्रयास करूँ तो उपयुक्त शब्द होंगे कि वे देशभक्ति की सजीव प्रतिमा थे । उनके लिए धर्म, मोक्ष, स्वर्ग और ईश्वर पूजा–सभी का अर्थ था देश सेवा, देशभक्ति और देश से प्यार ।"

विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के सिलसिले में अमृतसर की एक विराट सभा में व्यापारियों की इस बात का कि उनके पास करोड़ों रुपये का विदेशी कपड़ा गोदामों में भरा पड़ा है, अतः उनके लिए विदेशी कपड़ों के बहिष्कार कार्यक्रम का समर्थन करना सम्भव नहीं है, उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था–"आप करोड़ों रुपये के कपड़े की बात कर रहे हैं । मेरे सामने यदि तराजू के एक पलड़े में दुनियाभर की दौलत रख दी जाए और दूसरे में हिन्दुस्तान की आजादी, तो मेरे लिए तराजू का वही पलड़ा भारी होगा जिसमें मेरे देश की स्वतन्त्रता रखी हो ।"

१९२८ में सात सदस्यीय सायमन कमीशन भारत आया जिसके अध्यक्ष सायमन थे । इस कमीशन को अंग्रेज सरकार ने भारत में संवैधानिक सुधारों हेतु सुझाव देने के लिए नियुक्त किया था जबकि इसमें एक भी भारतीय नहीं था । इस अन्याय पर भारत में तीव्र प्रतिक्रिया हुई और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने पूरे देश में सायमन कमीशन के शान्तिपूर्ण विरोध का निश्चय किया। इसीलिए जब ३० अक्टूबर १९२८ को सायमन कमीशन लाहौर पहुँचा तब वहाँ उसके विरोध में लाला जी ने मदनमोहन मालवीय जी के साथ शान्तिपूर्ण जुलूस निकाला । इसमें भगतसिंह जैसे युवा स्वतन्त्रता सेनानी भी शामिल थे । पुलिस ने इस अहिंसक जुलूस पर लाठी चार्ज किया । इसी लाठी चार्ज में लालाजी को निशाना बनाकर उन पर जानलेवा हमला किया गया जिस से उन्हें घातक आघात लगा और अंततः १७ नवम्बर १९२८ को यह सिंह चिर–निद्रा में सो गये । अपनी मृत्यु से पूर्व लाला जी ने भविष्यवाणी की थी "मेरे शरीर पर एक–एक लाठी अंग्रेज सरकार के ताबूत में अन्तिम कील साबित होगी ।" जो कि सच साबित हुई । लाला जी की इस हत्या ने भगतसिंह आदि क्रान्तिकायों को उद्वेलित कर दिया । अभी तक वह गाँधी जी के अहिंसक आन्दोलनन में जी–जान से जुड़े थे किन्तु जब उन्होंने देखा कि शान्तिपूर्ण विरोध पर भी दुष्ट अंग्रेज सरकार लाला जी जैसे व्यक्ति की हत्या कर सकती है तो उन्होंने इस अन्याय व अत्याचार का बदला लेने की ठान ली और लाला जी के हत्यारे अंग्रेज अधिकारी साण्डर्स को मारकर ही दम लिया । ❑❑

॥ ओ३म् ॥

ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज और सत्यार्थप्रकाश के द्वारा वेदों की रक्षा का महान कार्य किया

—मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून (मो० : 09412985121)

ऋषि दयानन्द को अपने बाल्यकाल में सच्चे ईश्वर की खोज तथा मृत्यु पर विजय प्राप्ति के उपाय जानने की प्रेरणा हुई थी। उन्हें इस सम्बन्ध में अपने किसी पारिवारिक सदस्य व विद्वानों से समाधान प्राप्त नहीं हुआ था। इन प्रश्नों के समाधान के लिये उन्होंने अपने पितृगृह को छोड़कर एक सच्चे धर्म जिज्ञासु की तरह देश के अनेक भागों में जाकर धार्मिक विद्वानों तथा योगियों की संगति की थी व उनकी शरण ली थी। अपने उद्देश्य की पूर्ति तक वह एकनिष्ठ होकर ईश्वर एवं मृत्यु विषयक रहस्यों को जानने का प्रयत्न करते रहे। ऐसा करते हुए वह बालक मूलशंकर से संन्यासी स्वामी दयानन्द बने थे और अपने देशाटन, विद्वानों की संगति, अध्ययन व योग में प्रवीणता प्राप्त कर वह सच्चे योगी बने थे। योगी बनने पर मनुष्य को ईश्वर का सत्यस्वरूप प्राय: ज्ञात हो जाता है। सिद्ध योगी बनने के बाद भी उनमें विद्याप्राप्ति की इच्छा बनी रही। वह सच्चे विद्यागुरु की खोज में थे। उनकी इच्छा सन् 1860 में मथुरा के प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी गुरु विरजानन्द सरस्वती जी का सान्निध्य पाकर व उनसे विद्या प्राप्त कर पूर्ण हुई। अपने गुरु की प्रेरणा से ही उन्हें देश व संसार से अविद्या दूर करने का परामर्श मिला था जिसे उन्होंने सत्यनिष्ठा से स्वीकार किया था। उन्होंने अपने गुरु को गुरु की इच्छा व अपने वचन को पूर्ण करने का आश्वासन भी दिया था। गुरु से सन् 1863 में विदा लेकर स्वामी दयानन्द जी विद्या का प्रकाश करने के लिये कार्यक्षेत्र में प्रविष्ट हो चुके थे। उन्होंने आगरा में कुछ महीने रहकर विद्या का प्रचार किया और अपने भावी प्रचार की योजना तय की थी। यहाँ रहकर ही उन्होंने वेदों की लिखित प्रति प्राप्त करने के प्रयत्न किये थे। इसके लिये वह ग्वालियर, भरतपुर, करौली व जयपुर आदि भी गये थे। सम्भवत: राजस्थान के भरतपुर या करौली में उन्हें चार वेदों की प्रतियाँ प्राप्त हुई थीं जिसकी उन्होंने परीक्षा की थी और उन्हें सृष्टि की आदि में ईश्वर से प्राप्त सब सत्य विद्याओं से युक्त ज्ञान पाया था। स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी से उन्होंने वेदांगों का अध्ययन किया था। इनके पास आने से पूर्व भी वह प्राचीन धर्मग्रन्थों व शास्त्रों को ढूंढकर उनका अध्ययन किया करते थे। इस ज्ञान व अनुभव के आधार पर उन्होंने वेदों के मन्त्रों के सत्य अर्थों को जाना व समझा था। वेदों के आधार पर ही उन्होंने अपने धर्म सम्बन्धी सभी सिद्धान्तों का निश्चय किया था। उन्हें अविद्या तथा विद्या का विवेक था। इसी कारण से वह मूर्तिपूजा की निरर्थकता को समझ सके थे तथा इसके साथ ही उन्होंने अवतारवाद की मिथ्या मान्यताओं, मृतक श्राद्ध तथा फलित ज्योतिष आदि की निरर्थकता को भी जाना था और इनके खण्डन मे प्रवृत्त हुए थे।

वेदों को प्राप्त कर उनका अध्ययन करने तथा अपने गुरु के सान्निध्य में प्राप्त ज्ञान के आधार पर वह अविद्या व विद्या के यथार्थस्वरूप को जानने के साथ मत-मतान्तरों के ग्रन्थों, मान्यताओं तथा सिद्धान्तों में निहित अविद्या को भी जान सके थे। मनुष्य व समाज के लिये अत्यन्त हानिकारक अविद्या को पहचान कर उन्होंने इसका खण्डन करना भी आरम्भ किया था। वह धार्मिक सिद्धान्तों पर बहस, चर्चा व मन्थन करने से भागते नहीं थे अपितु उसका स्वागत करते थे और किसी भी जिज्ञासु व मत-पन्थ के आचार्य से हर समय अपने व परकीय मत, मान्यताओं व सिद्धान्तों पर सत्यासत्य की परीक्षा व चर्चा करने के लिए तत्पर रहते थे। वह अकेले ऐसे धर्माचार्य व विद्वान हुए हैं जिन्होंने महाभारत के बाद दूसरे मतों के आचार्यों से सबसे अधिक शास्त्रार्थ व शास्त्र चर्चायें की और उन सब में उनका पक्ष सफल रहा। उन्होंने वेदों के आधार पर जिन सिद्धान्तों को अपनाया था वह सब अकाट्य थे। आज तक भी कोई विद्वान व मताचार्य उनके किसी सिद्धान्त का वेद प्रमाण व तर्क एवं युक्तियों के आधार पर खण्डन नहीं कर पाया है। वेदों के सभी सिद्धान्त जो उन्होंने प्रचारित किये व जिसे उन्होंने अपने ग्रन्थों व वेदभाष्य आदि में प्रस्तुत किया है, वह आज भी अखण्डित एवं सत्य सिद्ध हुए हैं व हो रहे हैं। यह बात अलग है कि आज भी मत-मतान्तरों के आचार्यों ने अपनी अविद्यायुक्त मान्यताओं व परम्पराओं को छोड़ा नहीं है और वेद की सत्य मान्तयाओं को स्वीकार कर उन्हें आचरण में लाना आरम्भ नहीं किया है।

महर्षि दयानन्द अपने गुरु को देश व संसार से अविद्या दूर करने हेतु प्रयत्न करने का वचन देकर आये थे। उन्होंने मौखिक प्रचार से सत्य मान्यताओं का मण्डन और असत्य मान्यताओं का खण्डन करना आरम्भ किया था। वह जो प्रचार करते थे वह सब युक्तियों व तर्कों पर आधारित होता था। वह वेद और मनुस्मृति आदि शास्त्रों के प्रमाण देते थे और उनके तर्कसंगत होने को सिद्ध भी करते थे। मौखिक प्रचार का प्रभाव सीमित क्षेत्र पर ही होता है। इसमें वृद्धि करने के लिये अपने भक्तों की प्रेरणा से उन्होंने वेदानुकूल मान्यताओं सहित धर्म विषयक अपने सभी विचारों से युक्त सन् 1874 में सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ को लिखवाना आरम्भ किया था। लगभग साढ़े तीन मास में ही उन्होंने विश्व के अपने इस अपूर्व ग्रन्थ को पूर्ण कर लिया था। मनुष्य के मन में ईश्वर व सृष्टि सहित अपने आचार विचार, व्यवहार तथा कर्तव्य-अकर्तव्य को लेकर जो भी शंकायें व भ्रम हो सकते हैं, उन सबका निराकरण व समाधान ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में किया है। सत्यार्थप्रकाश का वर्तमान स्वरूप एक प्रकार से एक आदर्श धर्म शास्त्र का है जो सत्य को अपनाने और असत्य को छोड़ने की प्रेरणा करता है। सत्यार्थप्रकाश में धर्म, संस्कृति व जीवन से जुड़े प्रायः सभी विषयों की युक्ति व तर्क सहित विवेचन की पद्धति से परीक्षा की गई है और पाठकों को असत्य मान्यताओं के दोषें तथा सत्य मान्यताओं की सत्यता को बताते हुए सत्य को अपनाने की प्रेरणा दी गई है।

सत्यार्थप्रकाश को पढ़कर मनुष्य का चहुंमुखी बौद्धिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास वा उन्नति होती है। सत्यार्थप्रकाश को पढ़कर ईश्वर, जीवात्मा तथा प्रकृति व सृष्टि का सत्य स्वरूप विदित होता है। पाठक का आत्मा सत्य को स्वीकार

करता है तथा असत्य मान्यताओं व परम्पराओं से परिचित हो जाता है। इसके बाद मनुष्य को अपने हित व अहित को देखकर उन्हें स्वीकार करना होता है। बहुत से लोग सत्य को जानने पर भी उसे स्वीकार नहीं कर पाते। ऐसे ही कारणों से सत्यार्थप्रकाश विश्व का सर्वमान्य ग्रन्थ अभी तक नहीं बन पाया है परन्तु इसमें वह शक्ति विद्यमान है जिससे यह भविष्य का सर्वमान्य धर्म विष्यक ग्रन्थ होगा, यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है। एक ऐसा समय भी आ सकता है कि जब संसार के सभी लोग सत्यार्थप्रकाश व ऋषि के अन्य ग्रन्थों पंचमहायज्ञ-विधि, संस्कारविधि, ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका व योगदर्शन आदि के आधार पर उपासना व देवयज्ञ अग्निहोत्र आदि किया करेंगे और अपने वर्तमान जीवन सहित भविष्य व परजन्म का भी सुधार करेंगे।

ऋषि दयानन्द ने वेदों पर आधारित सत्य मान्यताओं सहित सम्पूर्ण वेदों का प्रचार करने के लिये वेदों के भाष्य लेखन का कार्य भी किया। असंगठित रूप से कार्य करने पर उसका प्रभाव सीमित होता है तथा संगठित प्रचार से प्रभाव में गुणात्मक वृद्धि होती है। अपने अनुयायियों की प्रेरणा व मांग पर ऋषि ने वेदों के प्रचार व प्रसार के लिये एक संगठन को स्थापित करना स्वीकार किया था और चैत्र शुक्ल पंचमी विक्रमी संवत् 1931 तदनुसार दिनांक 10 अप्रैल, 1875 को मुम्बई में आर्यसमाज के नाम से धर्म प्रचार तथा समाज व देश सुधार संगठन की स्थापना की थी। ऋषि दयानन्द ने ही आर्यसमाज के दस नियम बनाये हैं जो वेदानुकूल सिद्धान्तों पर आधारित होने सहित तर्क एवं युक्ति से अकाट्य सिद्ध हैं। यह ऐसे सिद्धान्त हैं कि जिसके समान हमें किसी धार्मिक व सामाजिक संगठन के सिद्धान्त उपलब्ध नहीं होते। इन नियमों में सभी सृष्ट पदार्थों तथा विद्या का आदि मूल परमेश्वर को बताया गया है। ईश्वर का सत्यस्वरूप व उसके गुण कर्म व स्वभाव को भी आर्यसमाज के दूसरे नियम में प्रस्तुत किया गया है। आर्यसमाज का दूसरा नियम ईश्वर के सत्यस्वरूप का ज्ञान कराने वाला ऐसा नियम है जिसके समान विश्व साहित्य में ईश्वर विष्यक ज्ञान व नियम उपलब्ध नहीं होता। आर्यसमाज के तीसरे नियम में वेदों को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक बताया गया है और सब मनुष्यों का उसको पढ़ना, आचरण करना तथा उसका प्रचार करना कर्तव्य व परम धर्म बताया गया है। एक नियम में अविद्या का नाश और विद्या की उन्नति की प्रेरणा भी की गई है।

आर्यसमाज की व्यापक विचारधारा सत्यार्थ प्रकाश तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य में उपलब्ध होती है। उनको मानना व उनका प्रचार करना आर्यसमाज का उद्देश्य व कार्य है। आर्यसमाज यह कार्य अपने स्थापना दिवस से निरन्तर कर रहा है। इसका पूरे समाज, देश व विश्व पर प्रभाव भी पड़ा है। क्रान्तिकारी वीर सावरकर जी ने कहा है कि सत्यार्थप्रकाश की उपस्थिति में कोई मत व पन्थ अपने मत की शेखी नहीं बघार सकता। देश को आजाद कराने तथा देश में शिक्षा के प्रसार सहित सामाजिक कुरीतियों तथा अन्धविश्वासों के उन्मूलन में आर्यसमाज की महती, अग्रणीय व प्रमुख भूमिका रही है। आर्यसमाज न होता तो हम आज वैदिक सनातन नित्य धर्म की क्या स्थिति होती, इसका अनुमान भी नहीं लगा सकते। आर्यसमाज ने सनातन वैदिक धर्म की रक्षा का महत्वपूर्ण कार्य भी किया है। आर्यसमाज की स्थापना सहित सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ के लेखन व प्रचार से वेदों की रक्षा सहित प्राचीन भारतीय

(शेष पृष्ठ 21 पर)

दलितोद्धार की आड़ में (६)

—राजेशार्य आट्टा पानीपत-१३२१२२, (मो०: ०९९९१२९१३१८)

[गतांक से आगे......]

मातादीन सम्मान का पात्र है, पर उसे १८५७ के संग्राम का असली हीरो नहीं बनाया जा सकता। उसका योगदान कारतूसों में चर्बी की बात बताने तक है, संग्राम में लड़ने मरने वाले तो हजारों वीर थे। वैसे भी उस संग्राम के बहुत कारण थे, केवल चर्बी वाले कारतूस नहीं । यह पूर्व नियोजित योजनाबद्ध संग्राम था, जिसमें लगभग उत्तर भारत भाग ले रहा था । वीर सावरकर ने यदि '१८५७ का स्वातन्त्र्य समर' पुस्तक नहीं लिखी होती (१९०७ ई०), तो आज भी उसे सैनिक विद्रोह ही माना जाता । उसे स्वतन्त्रता संग्राम सिद्ध करते हुए वीर सावरकर ने लिखा है—"यदि सन् १८५७ की क्रांति मुख्यतः कारतूसों के कारण ही प्रदीप्त हुई तो उसमें नाना साहब, दिल्ली का बादशाह, झांसी की रानी या रोहिल खंड का खानबहादुर कैसे सम्मिलित हुए? इनको अंग्रेजी सेना में नौकरी करनी नहीं थी या घर बैठे भी वह फौजी कारतूस तो तोड़ने ही होंगे, ऐसा आदेश भी किसी ने उन्हें नहीं दिया था।.....सेना के सिपाहियों ने ही नहीं बल्कि सेना से जिनका दूर का भी सम्बन्ध नहीं था—ऐसे लाखों लोगों ने, राजा महाराजाओं ने अपने प्राण रणभूमि पर क्यों अर्पित किए? फौजी और सामान्य जन, राजा और रंक, हिन्दू और मुसलमान –इन सबको एक साथ आवेशित करने वाली बातें क्षुद्र नहीं होती, उसके मूल में होते हैं तात्विक कारण ।" (पृ० ३६–३७)

लेखक दलित साहित्य के अन्तर्गत जिन्हें रखना चाहता है, उनके विषय में लिखा है—"महापराक्रमी रावण, बाली, कंस,...कैकयी, मंथरा, भीलनी, तारा, मन्दोदरी, उर्मिला, सीता, गांधारी, रुक्मिणी, अहिल्या, द्रौपदी, संयोगिता, फूलन देवी आदि अनगिनत वीरांगनायें हैं, जिन्हें इतिहास में न्याय नहीं मिला ।" (पृ० ५७) ।

समीक्षा :—रावण, बाली, कंस आदि को इतिहास में आर्य लिखा गया है, तथाकथित द्रविड़ (दलित) नहीं । वे अपनों के साथ भी अन्याय व अत्याचार कर अनार्य बने थे । इन्हें चाहे कोई अच्छा माने या बुरा, पर यह सत्य है कि ये दबंग थे, दलित नहीं। कैकेयी, मंथरा, भीलनी, मन्दोदरी, तारा, उर्मिला, सीता आदि का यथायोग्य चित्रण रामायण में हुआ है। गांधारी, द्रौपदी, रुक्मिणी महाभारत ग्रन्थ की मुख्य महिला पात्र हैं। रुक्मिणी के साथ अन्याय राधा की कल्पना करने वाले पुराण लेखकों ने किया है । इसी तरह उन्होंने अहिल्या के चरित्र को बदनाम करने का पाप भी किया है। महर्षि दयानन्द ने लगभग १५० वर्ष पूर्व उन दुष्टों की पाप लीला का भण्डाफोड़ कर दिया था,तब से उनके शिष्य इनके वास्तविक स्वरूप का ही प्रचार करते आ रहे हैं। यदि आप भी वही करना चाहते हो तो आर्यसमाज के साथ मिल जाइये । हिन्दी के महाकाव्य **'पृथ्वीराज रासो'** के कारण संयोगिता, समाज में प्रसिद्ध है, पर राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा (१८६३–१९४७ ई०) ने १९०८ ई० के लगभग संयोगिता व पृथ्वीराज चौहान के सम्बन्ध को काल्पनिक सिद्ध कर दिया था । लगभग सभी इतिहासकार उनसे सहमत हैं, सामान्य लोगों में ही पृथ्वीराज रासो की संयोगिता स्वयंवर लीला प्रचलित है । हाँ फूलनदेवी वर्तमान

समय की वीरांगना थी । अपने प्रति किये गये अन्याय (बलात्कार) का उसने वीरता से बदला लिया । परिस्थितिवश उसे साधारण महिला से डाकू बनना पड़ा । अच्छे कार्य के लिए उसे सम्मान मिलना चाहिए । आज के बिगड़ते हालात में उसका जीवन चरित्र नारी शक्ति में वीरता जगा सकता है ।

भारत की एकता

यह ठीक है कि हजारों लाखों वर्ष के इतिहास में और इतने लम्बे चौड़े देश में ऐसे भी बहुत से राजा हुए होंगे जो अपने आश्रित कवियों, भाटों व इतिहास लेखकों से अपना अतिशयोक्तिपूर्ण गुणगान सुनकर प्रसन्न रहते होंगे । पर इसका यह अभिप्राय तो नहीं है कि किसी भी राजा-महाराजा का सच्चा इतिहास मिलना असम्भव हो । लेखक ने इसे अंधेरे में प्रकाश खोजने के समान लिखा है, साथ ही यह भी लिखा है कि छोटे-छोटे राज्यों में बंटा भारत, कभी एक छत के नीचे सिमटा देश नहीं रहा । (पृ० ५७)

समीक्षा :—लेखक को जब भारत की हीनता सिद्ध करनी हो, तो लिखता है कि सारा भारत हजारों वर्ष विदेशियों का गुलाम रहा । मनु स्मृति को कोसना हो, तो सारे भारत में शूद्रों पर मनु की निर्दयी शासन प्रणाली के अंतर्गत अत्याचार किये गये । यदि भारत एक छत के नीचे कभी नहीं सिमटा रहा, तो यह सब कैसे सम्भव हुआ ? यदि भारत एक देश नहीं रहा, तो इस भूखण्ड का नाम भारत कैसे रहा? १९७१ ई० से बांग्लादेश, १९४७ ई० से पाकिस्तान, १९३७ ई० से बर्मा आदि देशों की तरह क्या सारे भूखण्ड में छोटे-छोटे देश ही थे, और भारत नहीं था ? फिर हजारों वर्ष विदेशियों का गुलाम कौन रहा? फिर ३२६ ई० पू० सिकन्दर का भारत पर हमला क्यों पढ़ाया जाता है, पंजाब पर क्यों नहीं ? यदि भारत एक देश नहीं था, तो बुद्ध की शिक्षाओं का प्रचार बर्मा से अफगानिस्तान तक कैसे हुआ? उससें पूर्व लिखे गये ऐतिहासिक ग्रन्थों रामायण, महाभारत का प्रचार प्रसार समस्त देश में कैसे हुआ ? वैदिक ग्रन्थों (वेद, उपवेद, आरण्यक, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, स्मृति, दर्शन आदि) व उपासना पद्धति तथा यज्ञादि कर्मकाण्ड का प्रचार कैसे हुआ ? यही नहीं वैदिक धर्म की विकृति (यज्ञों में पशु बलि, तन्त्र व पुराण ग्रन्थों का निर्माण, जन्मना जाति के कारण भेदभाव व छुआछूत) का प्रचार भी सम्पूर्ण देश में कैसे हुआ ? यदि छोटे-छोटे राज्य ही देश होते, तो हरियाणा में लिखी गई गीता का भाष्य केरल में उत्पन्न संन्यासी शंकराचार्य न करता । यही नहीं शंकराचार्य को उत्तरांचल (बद्रीनाथ) उड़ीसा (जगन्नाथपुरी), गुजरात (द्वारिका), कर्नाटक (शृंगेरी), तमिलनाडु (काञ्ची) में मठ स्थापित करने की अनुमति न मिलती तथा वे समस्त भारत के हिन्दुओं के आदरणीय (पूज्य) न बनते । इसे केवल सांस्कृतिक या धार्मिक एकता कहकर उपेक्षित नहीं किया जा सकता । वाल्मीकि-रामायण के अनुसार उत्तर प्रदेश (अयोध्या) में उत्पन्न राम मध्य प्रदेश (दण्डक वन), महाराष्ट्र (पंचवटी) कर्नाटक (किष्किन्धा), तमिलनाडु (रामेश्वरम्) आदि वर्तमान राज्यों में बेरोक-टोक घूमे थे । महाभारत में वर्णित पाण्डवों की दिग्विजय (सम्पूर्ण दक्षिण भारत) व महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में वर्णित रघु की दिग्विजय के वर्णन हिमालय से दक्षिण समुद्र तक समस्त भारत में एक छत्र राज्य को दर्शा रहे हैं। विष्णु पुराण में भारत के विषय में लिखा है—

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥

मौर्य सम्राटों के साम्राज्यों को दर्शाता मानचित्र-जिसमें आज के भारत का कुछ अंश

(उत्तर-पूर्व व दक्षिण का) छोड़कर पाकिस्तान व अफगानिस्तान तक समस्त भूखण्ड एक छत के नीचे दिखाई देता है (तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व)। यही अवस्था (सम्पूर्ण भारत सहित) गुप्त साम्राज्य (चौथी शताब्दी) व हर्ष कालीन भारत (६४० ई०) में देखी जा सकती है । मुस्लिम पराधीनता काल में भी इसी एकता के दर्शन होते हैं —अलाउद्दीन खिलजी के काल (१२९६-१३१६ ई०) में कुछ, अकबर के काल (१५५७-१६०५ ई०) में कुछ अधिक और औरंगजेब के काल में सर्वाधिक । पर यह हिन्दू कालीन एकता से कम थी । फिर मराठों ने प्रयास किया, पर अंग्रेज बाजी मार गये । १९४७ ई० में भी भारत की अवस्था सम्राट हर्षवर्धन के काल जैसे थी, अफगानिस्तान को छोड़कर । फिर कैसे मानें कि सम्पूर्ण भारत कभी एक छत के नीचे नहीं रहा ।

हजारों साल से चली आई परम्परा में समय के अनुसार हुए बदलाव से मना नहीं किया जा सकता, फिर भी यह सत्य है कि भारत व भारत से बाहर भी जिन इतिहास ग्रन्थों रामायण-महाभारत आदि का प्रचार-प्रसार है, वे राजमहल में बैठे किसी वैतनिक कवि या लेखक ने नहीं लिखे, अपितु सांसारिक धन व यश की कामना से ऊपर उठ चुके योगी महर्षियों द्वारा लिखे गये थे । केवल धन या यश के लिए लिखना तो आज की प्रवृत्ति है । उपनिषद्, अरण्यक, ब्राह्मण, दर्शन आदि ग्रन्थों के रचियता ऋषियों को धन देने वाला कौन राजा बैठा था ? क्या 'बुद्धचरितम्' और 'जातक माला' लिखने के लिए महात्मा बुद्ध ने कवि अश्वघोष और आर्यशूर को धन दिया था ? क्या 'रामचरितमानस' लिखवाने के लिए राम ने तुलसीदास को मालामाल किया था ? क्या भास, कालिदास भारवि जैसे कवियों से महाभारत पर आधारित नाटक व काव्य लिखवाने के लिए महाराज युधिष्ठिर आये थे और उन पर धन लुटाया था ?

यदि अतिश्योक्ति के कारण भारत के किसी भी राजा का इतिहास सच्चा नहीं है तो पुराणों की तर्ज पर आलौकिक चमत्कारों से भरा महात्मा बुद्ध का इतिहास सच्चा कैसे हो गया ? मुझे ऐसा लगता है कि किसी काल में चमत्कारिक कहानियों पर विश्वास करने वाले लोग सारे संसार में रहे होंगे। इसलिए सभी देशों व मत-पन्थों के लोगों ने अपने इष्टदेव व आदर्श पुरुषों के विषय में ऐसी कहानियाँ गढ़ीं और प्रचारित कीं । राजा भी उसी दायरे में आ गये । कवियों को अलंकारों से अपनी कविता का श्रृंगार भी तो करना होता है । स्मरण रहे, कवि द्वारा वर्णित सब कुछ सम्भव नहीं होता, पर सब कुछ अतिश्योक्ति (काल्पनिक) भी नहीं होता । ❑❑

ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज और सत्यार्थप्रकाश..... (पृष्ठ 18 का शेष)

वैदिक धर्म एवं संस्कृति की रक्षा हुई है और देश ने अनेक क्षेत्रों में उन्नति की है।

ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में लिखे शब्दों को लिख कर हम लेख को विराम देते हैं। वह लिखते हैं—**'जो उन्नति करना चाहो तो 'आर्यसमाज' के साथ मिलकर उस के उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा। क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने (देशवासी) मिलकर प्रीति से करें। इसलिए जैसा आर्यसमाज आर्यावर्त्त देश की उन्नति का कारण वैसा दूसरा नहीं हो सकता।'** ओ३म् शम्। ❑❑

गीता और आर्यसमाज

—पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय

- ❖ बाल की खाल खींची जा सकती है, परन्तु गीता के सभी स्थलों को वेदानुकूल सिद्ध नहीं किया जा सकता ।
- ❖ हमें वर्तमान भारतीय भावनाओं और वैदिक सिद्धान्तों में भेद करना होगा ।
- ❖ गीता सैर करने का बाग है, किसी आयुर्वेदज्ञ की वनस्पतिशाला नहीं ।
- ❖ जो उपदेश केवल रणक्षेत्र के ही योग्य हैं उनके प्रयोग में सावधानी की आवश्यकता है ।
- ❖ गीता को हम दार्शनिक पहेलियों का सम्मिश्रण कह सकते हैं ।

प्राचीन भारतीय साहित्य में श्रीमद्भगवद्गीता का मान संसार-भर में सबसे अधिक है और लगभग एक शताब्दी से तो इसका मान देश में और देश के बाहर सबसे अधिक हुआ है । इसमें सबसे बड़ा श्रेय मिसेज बीसेण्ट को है । इन्होंने लगभग साठ वर्ष हुए गीता का एक अंग्रेजी अनुवाद गुटके के रूप में निकाला था । इसकी भाषा सरल और सरस थी । केवल दो आने दाम थे । अंग्रेजी जाननेवाले जगत् के सभी देशों में इसका बहुत प्रचार हुआ । थियोसोफिकल सोसायटी ने इस काम को चार चाँद लगा दिये । लोकमान्य तिलक ने 'गीता रहस्य' लिखकर राजनैतिक जगत् का ध्यान इस ओर खींचा और महात्मा गांधी ने गीता को एक नया रूप दे दिया। इस प्रकार इस शताब्दी में गीता साधुओं और पुरानी चाल के पण्डितों के चंगुल से निकलकर एक विस्तृत आकाशमण्डल में देदीप्यमान हो गई । आजकल तो गीता ने अनेक रूप धारण कर लिये हैं । एक ऐसे भी सज्जन हैं जो एलोपैथी और होमियोपैथी के समान गीतापैथी को भी रोगों की चिकित्सा का एक साधन समझते हैं ।

ऐसी प्रसिद्ध पुस्तक के विषय में जो संस्कृत-साहित्यरूपी समुद्र का एक अमूल्य मोती समझा जाता है, आर्यसमाज जैसी बौद्धिक संस्था के लिए यह प्रश्न हो जाता है कि इसका दृष्टिकोण क्या होना चाहिए ?

साहित्य की दृष्टि से तो यह प्रश्न बड़ा सुस्पष्ट है, काव्य सुन्दर, भाषा मधुर, शैली हृदयग्राहक । पढ़ते जाइए, छोड़ने को जी नहीं चाहता । जो विद्याप्रिय सज्जन किसी एक विशेष मत से सम्बन्ध नहीं रखते और संसार के साहित्य सोपान में स्वच्छन्द विचरना चाहते हैं, वे तो गीता पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहेंगे । परन्तु आर्यसमाज की एक विशेष दृष्टि है । उसने संसार के साहित्य को तीन भागों में बाँट रक्खा है । एक स्वतः प्रमाण जिससे आप प्रत्यक्ष रूप में जीवन के आध्यात्मिक तत्त्वों का ज्ञान ग्रहण कर सकते हैं । इस कोटि में वेद माने जाते हैं और वे भी केवल मन्त्र-संहिता में ही अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद । दूसरी कोटि परतः प्रमाण की है । इसमें उपनिषदें, दर्शन, मनुस्मृति तथा ऋषि दयानन्द के अपने ग्रन्थ हैं जो वेदानुकूल होने से मान्य हैं । तीसरी कोटि में समस्त अन्य ग्रन्थ हैं । उनमें बहुत-से बहुत उत्कृष्ट, कुछ साधारण और अनेक त्याज्य हैं । प्रश्न यह है कि गीता इनमें से किस कोटि में आती है? मेरा विचार है कि गीता पहली दो

कोटियों में से किसी में नहीं आती । न स्वतः प्रमाण है, न परतः प्रमाण । इन दो कोटियों को अलग रख दिया जाये तो गीता साहित्य का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है । गीता महाभारत का एक भाग है । महाभारत में कई गीताएँ हैं । 'भगवद्गीता' जिस गीता का आजकल नाम है, वहाँ उन कविताओं में से एक है । महाभारत एक बहुत बड़ा ग्रन्थ है । एक विशाल और अति विस्तृत जाति के पिछले पांच सहस्र वर्ष के मीठे और कड़वे हर प्रकार के अनुभवों की एक रामकहानी है जिनमें स्वच्छ निर्मल प्रचंड मार्तण्ड की सर्व-प्रकाशक छाया के अतिरिक्त अमावस्या का घोर अन्धकार भी ओतप्रोत है । महाभारत को आप दर्शपौर्णमास दृष्टि का प्रतीक समझ सकते हैं जिसकी मैमांसिक तुलना इस लेख का विषय नहीं है । ऐसी पुस्तक का एक अंग अर्थात् गीता भी उसी लक्षण से लक्षित है । उन सब विद्या-विलासियों के अनेक परिश्रमों को दृष्टि में रखते हुए भी जो गीता के अनेक प्रकार के भाष्यों में गीता की सहस्रमुखी शिक्षाओं को सहस्र प्रकार से वर्णित करने में होते रहे हैं, यह कहना पड़ेगा कि-

डोर है उलझी हुई इसका सिरा मिलता नहीं —

शायद इसीलिए महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में गीता के विषय में एक-दो श्लोकों से अधिक नहीं मिलता । जिस प्रकार वह चाणक्यनीति आदि के आकस्मिक उद्धरण देते हैं उसी प्रकार गीता के। क्योंकि वह समझते होंगे कि उलझी हुई डोर का सिरा ढूंढने का प्रयत्न निरर्थक है । परन्तु बहुत दिनों से आर्यसमाज में विचार-स्वातन्त्र्य की कुछ कमी हो रही है । हम वर्तमान भारतीय भावनाओं और वैदिक सिद्धान्तों में भेद नहीं कर सकते । पहले हम "आर्य" थे । अब हिन्दू आर्य हैं । इसीलिए यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि गीता को कौन-सा स्थान देवें, अर्थात् जब किसी संदिग्ध विषय का निर्णय करना हो तो गीता के कथनों को कहाँ तक प्रामाणिक माना जाए ? जो असंदिग्ध बातें हैं वहाँ तो आप गीता को मान ही सकते हैं, और इसी प्रकार सैकड़ों अन्य ग्रन्थों को। सीधा सड़क पर हत्थों (signal) की आवश्यकता नहीं होती । जहाँ कई मार्ग एक दूसरे को काटते हैं वहाँ समझ में नहीं आता कि यह उपादेय है और यह त्याज्य । यदि ऐसी अवस्था हो तो गीता आपको सहायता नहीं दे सकती । जो फल आपके विनोद और प्रमोद का साधन है, वही आपकी औषधि का काम नहीं दे सकते । गीता सैर करने का बाग है, किसी आयुर्वेदज्ञ की वनस्पतिशाला नहीं ।

अच्छा, आइये हम गीता पर एक समालोचक दृष्टि डालें । गीता का आरम्भ रणभेरी से होता है। अर्जुन के मन में शंका उत्पन्न हो जाती है। उसने युद्ध के परिणामों का एक सच्चा चित्र खींचा है-

कुलक्षयकृतं दोषों मित्रदोहे च पातकम् ।
कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ॥
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ।
अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः॥
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ।
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ॥
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः॥

श्रीमद्भगवद्गीता १.३८-४३

युद्धों के यही परिणाम हुआ करते हैं और महाभारत के भी यही हुए । गत पाँच सहस्र वर्ष का भारतीय संस्कृति का क्रमशः ह्रास अर्जुन की भविष्यवाणी का ठीक-ठीक द्योतक है । श्रीकृष्ण ने इसका खण्डन नहीं किया । उत्तर था भी क्या? बात तो सच थी । परन्तु युद्ध तो करना ही था, अतः श्रीकृष्ण ने केवल भावुकता की अपील

की–

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।
क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥

श्रीमद्भगवद्गीता २.२-३

यह शंका का समाधान था । एक बात तो ठीक है । अर्जुन सिपाही था । उसका काम युद्ध के औचित्य-अनौचित्य के सोचने का नहीं था। अर्जुन को हम कहीं नीतिज्ञों के समान इस पर विचार करते नहीं पाते । युद्ध के उत्तरदाता कोई और ही थे । श्रीकृष्ण का भी उसमें हाथ रहा होगा। परन्तु आज युद्ध के पश्चात् यह कहना कठिन है कि युद्ध न होता तो पाण्डवों के अतिरिक्त जगत् को समष्टि रूप से या वैदिक संस्कृति की क्या हानि होती । प्रायः युद्धप्रिय लोगों को हम श्रीकृष्ण के **'अनार्यजुष्ट'** आदि शब्दों को दुहराते हुए सुनते हैं, परन्तु यह शब्द है युद्धक्षेत्र के ही योग्य । नागरिक जीवन में यह मनोवृत्ति जनसामान्य का अकल्याण ही करती है । मैंने एक पुस्तक में पढ़ा था कि–Preparation of war are more pleasant than the war itself अर्थात् युद्ध की तैयारी में अधिक मजा आता है, इतना युद्ध में नहीं । मैं इसमें एक वाक्य और जोड़ता हूँ Talking about war is still more pleasant अर्थात् युद्ध की बातें करना तो और भी अधिक मजेदार चीज है । यही कारण है कि हम सर्वसाधारण में प्रतीक्षण युद्ध की बातें सुनते हैं । इनसे वीरता तो नहीं आती। हाँ, लड़ाकूपन आ जाता है । अतः जो उपदेश केवल रणक्षेत्र के ही योग्य हैं उनके प्रयोग में सावधानी की आवश्यकता है ।

अब श्रीकृष्ण महाराज के आत्मा की अमरता के विषय में वे अनमोल वचन सुनिए जिनके लिए गीता प्रसिद्ध है–

न जायते मियते वा कदाचिन् नायं भूत्वा भविता वा नः भूयः ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणे न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थकं घातयति हन्ति कम्॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

श्रीमद्भगवद्गीता २.२०-२३

परन्तु यह भी रणस्थली में ही उपयुक्त बैठता है । वीर सिपाही को मौत से डरना नहीं चाहिए, क्योंकि जीव मरता नहीं । परन्तु यदि सर्वसाधारण इस बात को जीवन का नियम बना लें **'कं घातयति हन्ति कम्'**–कौन किसको मारता है, तो संसार में हत्या और हिंसा की सीमा न रहे। जीव के अमर होने पर भी संसार को यह सिखाने की आवश्यकता है कि जीव मरता तो नहीं, परन्तु पीड़ित तो होता ही है । अमेरिका वालों से पूछो कि हिरोशिमा में तुमने क्या किया? और अगर वे कहें कि **'कं घातयति हन्ति कम्'** तो आज जगत् का क्या हाल होगा? सैकड़ों कसाई प्रतिदिन कहते हैं, "कौन किसको मारता है ! जीव अमर है ।" इन पंक्तियों के साथ गीता के उस सदुपदेश की भी संगति मिलानी है ।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

श्रीमद्भगवद्गीता ५.१८

दो प्रवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं–रणक्षेत्र की प्रवृत्ति और सामान्य नागरिक जीवन की प्रवृत्ति। जब इन दोनों का भेद ठीक-ठीक समझा नहीं जाता तो जगत् में अहितकर शक्तियों की उत्पत्ति हो जाती है । गीता में इन दोनों प्रवृत्तियों को

मिलाकर उलझन में डाल दिया गया है और अज्ञों के बहक जाने की पर्याप्त सम्भावना है ।

गीता में जीव और ब्रह्म के विवेक के लिए बहुत कम सामग्री है । **'न जायते म्रियते वा कदाचित्'** यह ब्रह्म के विषय में है या जीव के? नित्यं, अजम्, अव्ययम्—ये दोनों पर घट सकते हैं । प्रकरण से क्या ज्ञात होता है—इसमें भी उलझन है । ईश्वर तो सचमुच न मरता है, न जन्म लेता है, परन्तु वह तो प्रसंग की बात नहीं है । यदि जीव के विषय में यह कथन है, तो जन्म और मृत्यु के तत्त्व को उलझन में डाल दिया गया है । सिपाही के प्रति तो यह उपदेश ठीक है, परन्तु तत्त्वज्ञ के लिए यह एक पहेली रहती है और गीता इस उलझन को स्पष्टतया सुलझाती नहीं । यही कारण है कि अद्वैतवादी शंकर, विशिष्टाद्वैतवादी रामानुज, भेदाभेदवादी निम्बार्क तथा अनेक वादों के प्रणेता तथा अनुयायी दार्शनिकों ने गीता को यथाकाम क्रीडास्थली बना डाला । गीता को हम दार्शनिक पहेलियों का सम्मिश्रण कह सकते हैं। या यों कहिए कि यह एक दर्पण है जिसमें हर दार्शनिक अपना ही चित्र देखता है । यह गुण है या अवगुण—यह सोचने की चीज है ।

'न जायते म्रियते वा' कहकर भी गीता ईश्वर के अवतारवाद का पोषक है । आप कितनी ही व्याख्या करने की कोशिश क्यों न करें, गीता के कतिपय श्लोक उस समय के लिखे प्रतीत होते हैं जब श्रीकृष्ण को ईश्वर का अवतार माना जा चुका था । **'यदा-यदा हि धर्मस्य'** वाले प्रसिद्ध श्लोक के प्रकरण से अलग करके कुछ ही अर्थ क्यों न हो सकते हों, फिर भी यदि पूर्वापर मिलाया जाए तो यह है अवतार । इससे छुटकारा पाना कठिन है । विराट रूप वाले श्लोक तो और भी संदेह में डाल देते हैं । बाल की खाल खींची जा सकती है, परन्तु गीता के सभी स्थलों को वेदानुकूल सिद्ध नहीं किया जा सकता । हाँ यह मानना पड़ेगा कि गीता वेदों का मान करती है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।।
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।।

श्रीमद्भगवद्गीता १६.२३-२४

यहाँ शास्त्र का अर्थ 'वेद' ही है और वेद के अनुकूल आचरण करने पर ही यहाँ बल दिया गया है ।

एक छोटे लेख में गीता की विस्तृत समालोचना कठिन है । यहाँ कुछ संकेत से कह दिया गया है । लेख अपूर्ण ही प्रतीत होगा । आर्यसमाजियों के लिए तो यह एक गम्भीर विषय है, क्योंकि दूसरों के प्रति वैदिक धर्म का तात्त्विक स्वरूप रखने में गीता का कितना आश्रय लिया जाए, इस विषय में उलझनें उत्पन्न हो जाती हैं।

[स्रोत : गंगा ज्ञान सागर, भाग १, पृ० २१३-२१६, सम्पादक : प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु', प्रस्तुतकर्ता : भावेश मेरजा]

❑❑

अर्थतोषिणं श्रीः परित्यजति ।।

धन से सन्तुष्ट हो जाने वाले मनुष्य को लक्ष्मी त्याग देती है ।

आत्मायत्तौ वृद्धिविनाशौ ।।

अपनी वृद्धि और विनाश दोनों अपने हाथ में हैं ।

श्रद्धांजलि–

श्री स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक नहीं रहे !

श्री स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक नहीं रहे! ४ फरवरी २०२१ को सुबह में रोजड़ स्थित वानप्रस्थ साधक आश्रम में उनका देहावसान हो गया । स्वामी जी आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं योग साधक थे । उनके प्रारम्भिक जीवन को देखकर हमें आश्चर्य होता है कि वे कहाँ से कहाँ पहुँच गए । उनके जीवन में जो असाधारण उत्कर्ष हुआ इसके पीछे उनके पूर्वजन्म के संस्कार भी कारणभूत हो सकते हैं । स्वामी जी ने आर्यसमाज के पण्डितों से वेद, व्याकरण, दर्शन आदि ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया ।

स्वामी सत्यपति जी ईश्वर साक्षात्कार अथवा मोक्ष को सर्वाधिक महत्त्व देते थे । उनका धर्मोपदेश ईश्वर, ईश्वर साक्षात्कार, मोक्ष, योग आदि विषयों पर ही केन्द्रित होता था । वे जब इन विषयों पर प्रवचन करते थे, तब श्रोताओं को ईश्वर, जीवात्मा, मुक्ति आदि परोक्ष विषयों की सत्ता में अनायास श्रद्धा-विश्वास उत्पन्न हो जाता था ।

स्वामी जी ने लगभग पाँच दशक तक देश-विदेश में विभिन्न स्थानों पर योग शिविरों को आयोजित कर सैद्धान्तिक तथा क्रियात्मक योग का प्रचार किया । स्वामी जी ने रोजड़ में दर्शन योग महाविद्यालय तथा वानप्रस्थ साधक आश्रम जैसी संस्थाओं के माध्यम से अनेक जिज्ञासुओं तथा ब्रह्मचारियों को वैदिक दर्शनों की शिक्षा प्रदान की और उन्हें क्रियात्मक योगाभ्यास के क्षेत्र में प्रवृत्त किया । यह प्रसन्नता की बात है कि वर्तमान में उनके कई योग्य शिष्य-प्रशिष्य अपने-अपने स्तर पर वैदिक अध्यात्म एवं दर्शन विद्या का अध्ययन-अध्यापन एवं प्रचार-प्रसार कर रहे हैं।

स्वामी सत्यपति जी का सम्पूर्ण जीवन दर्शन-विद्या और योगाभ्यास के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित रहा । उन्होंने महर्षि पतञ्जलि जी के योग सूत्रों का सुन्दर भाष्य प्रस्तुत किया है जो समझने में सरल है और चमत्कारवाद, अतिश्योक्ति आदि दोषों से सर्वथा मुक्त है । वे योग दर्शन में वर्णित विभूतियों की सृष्टिक्रम अनुकूल, बुद्धि- प्रमाण संगत व्याख्या करने के पक्षधर थे। उनके उपदेशों का संग्रह जो बृहती ब्रह्ममेधा के नाम से तीन खण्डों में प्रकाशित हुआ है इसमें उन्होंने वैदिक अध्यात्म विद्या की सरल सुगम व्याख्या प्रस्तुत की है । इस ग्रन्थ को ठीक से पढ़ने से पाठकों को वैदिक संध्या-उपासना तथा योग का मर्म सुगमता से समझ में आ सकता है और महर्षि दयानन्द जी के सत्यार्थ प्रकाश, आर्याभिविनय, वेदभाष्य आदि ग्रन्थों के तात्पर्य को ठीक से समझने में भी सुविधा प्राप्त होती है, एक विशिष्ट आध्यात्मिक-दार्शनिक दृष्टि प्राप्त होती है । स्वामी जी द्वारा रचित सरल योग से ईश्वर साक्षात्कार, योग मीमांसा आदि अन्य ग्रन्थ भी अति मूलयवान हैं ।

स्वामी सत्यपति जी ने एकनिष्ठ भाव से महर्षि दयानन्द जी के मन्तव्यों को अपने जीवन के मार्गदर्शक सूत्रों के रूप में धारण किया था। वे महर्षि जी के मन्तव्यों को आप्त प्रमाण की कोटि के मान कर चले थे । वे महर्षि जी का नामोल्लेख सदैव आदरपूर्वक करते थे ।

यह निश्चित है कि एक उच्च कोटि के दार्शनिक तत्त्ववेत्ता, योग साधक, वैदिक धर्मोपदेशक तथा आदर्श संन्यासी के रूप में स्वामी सत्यपति जी महाराज की स्मृति चिरस्थायी बनी रहेगी ।

प्रस्तुतकर्ता : भावेश मेरजा
मो० 9879528247

बुद्धिजीवियों की दृष्टि में—शाकाहार और मांसाहार

प्रस्तुति :– दिनेश कुमार शास्त्री

मनुष्य स्वभाविक रूप से शाकाहारी है

प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ० स्वामी सत्यप्रकाश जी द्वारा एक परीक्षण मनुष्य को प्राकृतिक रूप से शाकाहरी सिद्ध करने के लिए किया था ।

उन्होंने गौ से भरे हुए बाड़े में मानव शिशु को छोड़ दिया, सभी गौ आराम से चरती रहीं और किसी ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी । उसी बाड़े में उन्होंने शेर के एक छोटे शावक को छोड़ दिया, उसे देखकर सभी गौ ठिठक गईं और चरना छोड़कर रक्षात्मक रूप से खड़ी होकर उसे एकटक घूरने लगीं ।

इस परीक्षण से सिद्ध हुआ कि मनुष्य स्वाभाविक रूप से शाकाहारी है ।

एथलीट्स को मजबूत होने के लिए मीट खाने की जरूरत होती है

सुशील कुमार (ओलम्कि पदक विजेता) शाकाहारी है । मांसाहारी देश जैसे पाकिस्तान, बांग्लादेश, सोमालिया, साऊदी अरब, ईरान, ईराक आदि ओलम्पिक सूची में कहाँ हैं ?

अमेरिका और चीन के खिलाड़ियों के गोल्ड मैडल जीतने के कारण अलग हैं ।

अकेले मेरे मांसाहार छोड़ने से कुछ नहीं बदलेगा

फर्क पड़ता है । एक परिवार कम से कम 3० पशुओं को हर साल बचा सकता है । सिर्फ अमेरिका में लोगों ने पाँच साल पहले के मुकाबले कोई 4०० कम जानवर खाए । और ऐसा ही भारत में भी हो रहा है । समय बदल रहा है ।

हमें प्रोटीन के लिए मांस खाना चाहिए

नहीं, ऐसा जरूरी नहीं है । प्रोटीन वनस्पतीय भोजन में भी प्रचुरता से भरे होते हैं । बीन्स (सेमफली), मेवा से टोफू और गेंहूँ.....आपको पर्याप्त प्रोटीन प्राप्त करने के लिए मांसाहार की जरूरत नहीं है । यह एक मिथक है । यदि मांस और प्रोटीन से ही स्वास्थ्य होता तो –अमेरिका में 62% मोटे ना होते । पाकिस्तान में दुनिया की सबसे अधिक जेनेटिक (अनुवांशिक) बीमारी नहीं होती।

फार्म में पशुओं के साथ अमानवीय व्यवहार होता है

दूर–दूर तक नहीं । खाने के लिए पाले जाने वाले पशुओं में 95 प्रतिशत से अधिक फैक्ट्री फार्म में घोर कष्टमय जीवन जीते हैं । गंदे, तंग क्रेज में खचाखच ठूँसे हुए, बिना दर्दनिवारक के अंग–भंग की पीड़ा सहने के मजबूर, और निर्दयतापूर्वक वध किये जाते हैं । यकीन नहीं होता ? तो लवन जनइम पर टर्की पक्षी के पंख हटाने की प्रक्रिया देखिये । इतना ही नहीं फार्म हाउस पर पशुओं और पक्षियों को बड़ी मात्रा में एंटीबायोटिक व कृमिनाशक दवाई दी जाती है । यह दवाईयां मांस के साथ अल्प मात्रा में हमारे शरीर में पहुँचती हैं । मानव शरीर में जीवाणु इन दवाईयों के प्रति, प्रतिरोध उत्पन्न कर लेते हैं। इससे हमारी बीमारी अधिक जटिल होती जा रही हैं। ❑❑

आर. एन. आई. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/०२/२०२१
भार- ४० ग्राम

फरवरी 2021

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2021-23
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०२१-२३
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2021-23

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा
के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

• प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु. प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
• विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु. प्रचारार्थ 50 रु.	
• उपहार संस्करण	मुद्रित मूल्य 1100 रु. प्रचारार्थ 750 रु.	
• स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30¸8	मुद्रित मूल्य 150 रु.	प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की
अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650522778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका
श्री सेवा में.........................
ग्राम.........................
डा०.........................
जिला.........................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।